अंक : ११७

जनवरी- मार्च २०१२

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

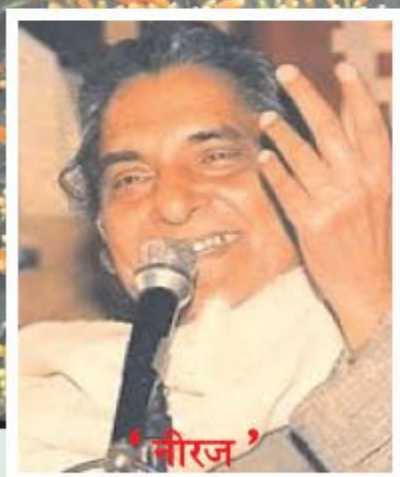

'नीरज'

कहानियां

हरिप्रकाश त्यागी • आशा अय्यर 'कनुप्रिया'

डॉ.देवेंद्र सिंह • संजीव निगम • सैली बलजीत

सागर-सीपी

डॉ.गोपाल दास सक्सेना 'नीरज'

आमने-सामने

सैली बलजीत

१५ रुपये

जनवरी-मार्च २०१२

(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"

संपादिका
मंजुश्री

संपादन सहयोग
प्रबोध कुमार गोविल
जय प्रकाश त्रिपाठी
अश्विनी कुमार मिश्र
हम्माद अहमद ख़ान

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

●सदस्यता शुल्क●
आजीवन : ५०० रु., **त्रैवार्षिक** : १२५ रु.,
वार्षिक : ५० रु.,
(वार्षिक शुल्क ५ रु. के डाक टिकटों के रूप में भी स्वीकार्य है)
कृपया सदस्यता शुल्क चैक (कमीशन जोड़कर), मनीऑर्डर, डिमांड ड्राफ्ट द्वारा केवल **"कथाबिंब"** के नाम ही भेजें.

●रचनाएं व शुल्क भेजने का पता●
ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई-४०० ०८८.
फोन : २५५१ ५५४१, ९८१९१६२६४८

● न्यूयॉर्क संपर्क ●
Naresh Mittal, Gerard Pharmacy,
903 Gerard Avenue, Bronx NY 10452
Tel : 718-293-2285, 845-304-2414 (M)

●"कथाबिंब" वेबसाइट पर उपलब्ध●
www.kathabimb.com

e-mail : kathabimb@yahoo.com

एक प्रति का मूल्य : १५ रु.
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु १५ रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें.
(सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ)

कहानियां

कैकेयी कथा – **हरिप्रकाश त्यागी** ७
तो का करें ? – **आशा अय्यर "कनुप्रिया"** १३
घर के लिए – **डॉ. देवेंद्र सिंह** १७
और सतीश जीत गया... – **संजीव निगम** २१
असली नाम ...चरनदास – **सैली बलजीत** २५

लघुकथाएं

एक / **डॉ. कमल चोपड़ा** १९
नानू के उदार मित्र / **डॉ. सीमा शाह** ३२
स्मृति चिन्ह / **कमलेश भारतीय** ४४
सोच / **डॉ. नरेंद्र नाथ साहा** ४५
जल्दबाजी / **कमलेश भारतीय** ४६

ग़ज़लें / गीत

ग़ज़लें / **नूर मुहम्मद "नूर"** ११
ऋतुराज / **डॉ. रामदुलारे पाठक** १२
गीत / **अल्पना** ३२
गीत / **डॉ. माया सिंह "माया"** ४५
ग़ज़ल / **हुमायूं जमील** ४६
ग़ज़ल / **प्रद्युम्न भल्ला** ४६

स्तंभ

"कुछ कही, कुछ अनकही" २
लेटर बॉक्स ४
"आमने-सामने" / **सैली बलजीत** ३३
"सागर-सीपी" / **डॉ. गोपालदास "नीरज"** ३८
"बाइस्कोप" (*सविता बजाज*) / **गिरीश कर्नाड** ४१
पुस्तक-समीक्षा ४३

आवरण चित्र : नमित सक्सेना
पुष्प आच्छादित एक चारदीवारी, शंकर नगर, लखनऊ

"कथाबिंब" मुंबई की "संस्कृति संरक्षण संस्था" के सौजन्य से प्रकाशित होती है.

कुछ कही, कुछ अनकही

बहुत सालों से, *"कथाबिंब"* के "आमने-सामने" स्तंभ में प्रकाशित आत्मकथ्यों को पुस्तक रूप में निकालने की इच्छा थी. पिछले वर्ष, कोलकाता के प्रकाशक भारत विद्या निकेतन ने *"महिला रचनाकार : अपने आइने में"* पुस्तक प्रकाशित की जिसमें १२ महिला रचनाकारों के आत्मकथ्य संकलित हैं और इस वर्ष, अभी हाल में, दिल्ली के भावना प्रकाशन द्वारा २२ पुरुष रचनाकारों के आत्मकथ्यों की पुस्तक *"आमने-सामने"* प्रकाशित की गयी है. पुस्तक प्राप्ति हेतु "कथाबिंब" के लेखक व पाठक सीधे प्रकाशकों से संपर्क कर सकते हैं, उन्हें पुस्तक के मूल्य पर २० प्र. श. छूट मिल सकेगी. अधिक जानकारी हेतु पृष्ठ ४८ देखें.

इस अंक में *"कमलेश्वर-स्मृति कथा पुरस्कार-२०११"* के परिणाम की घोषणा भी छपी है. सभी विजेताओं को *"कथाबिंब"* की ओर से अशेष बधाई ! शीघ्र ही सभी को पुरस्कार की राशि और प्रशस्ति-पत्र भेजे जा रहे हैं. उन सभी लेखकों/पाठकों के भी हम आभारी हैं जिन्होंने अभिमत-पत्र भेजकर निर्णय प्रक्रिया में सहयोग किया.

●

इस अंक की कहानियों की कुछ बानगी -- पहली कहानी *"कैकेयी कथा"* (हरिप्रकाश त्यागी) संपूर्ण राम-कथा को एक नये संदर्भ में प्रस्तुत करती है. कैकेयी के चरित्र को सामान्य व प्रचलित धारणाओं के विपरीत, एक अलग रूप में लेकर आयी है, यह कथा. कैकेयी का दर्द इस कथन में मुखरित होता है कि कोई भी अपनी पुत्री का नाम उसके नाम पर नहीं रखना चाहता. आशा अय्यर "कनुप्रिया" की कहानी *"तो का करें"* भी नारी की पीड़ा और दर्द की कहानी है. सारी वर्जनाएं केवल नारी के लिए हैं. दबे-छुपे ही सही, समाज पुरुष का दूसरी स्त्री के पास जाना स्वीकार कर लेता है. लेकिन ऐसे में पत्नी क्या करे ? इस प्रश्न का उत्तर किसी के पास नहीं है. अगली कहानी *"घर के लिए"* (डॉ. देवेंद्र सिंह) नारी का एक भिन्न रूप लेकर आयी है. पूरी ज़िंदगी पुरुष पत्नी पर हुकुम चलाता रहता है. संस्कारों से बंधी पत्नी चाहकर भी विरोध नहीं कर पाती, "घर छोड़कर जाने का विचार कभी मन में नहीं आया...और अब तो पति रोगग्रस्त है." ऐसे ही संस्कार मां पुत्री को देना चाहती है – पुरुष ही पिता, पति, पुत्र-भाई-दामाद, काका-बाबा, नाना-मामा हैं. सब मर्दों को एक बढ़नी से बुहार देना ठीक नहीं. सभी रिश्ते आपस में एक-दूसरे से जुड़े हैं. *"कथाबिंब"* के पाठकों के लिए संजीव निगम नया नाम नहीं है. कहानी *"और सतीश जीत गया..."* मुंबई के उन असंख्य युवकों की कहानी है जिन्हें गांव में काम न होने के कारण विवश हो महानगर आना पड़ता है ताकि थोड़े-कुछ पैसे मां-बाप को भेज सकें, लेकिन वे एक ऐसे चक्रव्यूह में फंस जाते हैं जिससे बाहर आना बहुधा संभव नहीं होता. किंतु सतीश हार नहीं मानता बल्कि वह जीतता है और अपने साथियों के लिए भी एक उदाहरण बनता है. सैली बलजीत की कहानी *"असली नाम ...चरनदास"* एक ऐसे मुफलिस आदमी की कहानी है जिसका कोई ठौर-ठिकाना नहीं है.यहां तक कि जो लोग दिन-रात उसका इस्तेमाल करते हैं, उसे अपने अपने मनोरंजन का साधन बनाते हैं, वे भी शायद उसका असली नाम नहीं जानते!

●

चाहे प्रिंट मीडिया हो या इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, वर्तमान समय किसी "स्वर्ण युग" से कम नहीं. हर कोई पैसा बटोर रहा है. नित नये घोटाले, हर दिन नयी राजनीतिक उठा-पटक. "पेड न्यूज़" का भी बाज़ार गर्म है. एक चैनल कोई समाचार देती है तुरंत सभी दूसरी चैनलें होड़ करने लगती हैं. प्रत्येक छोटी-बड़ी घटना के समाचार को "एक्सक्लूसिव" कहकर परोसा जाता है. हर चैनल की अपनी "लीनिंग" है – राइट, मध्य या लेफ़्ट. सुबह से शाम तक "न्यूज ब्रेक" होती रहती है. वे ही विशेषज्ञ एक चैनल के स्टूडियो से दूसरे चैनल के स्टूडियो तक "हॉप" करते रहते हैं. रात होते-होते सब ठंडा हो जाता है. नया दिन, नयी चुनौती!

पांच राज्यों के संभावित परिणामों को लेकर तरह-तरह की अटकलें लगायी जा रही थीं. उत्तर प्रदेश के शुरू के रुझानों से भी कोई स्पष्ट तस्वीर उभर कर नहीं आ रही थी. बसपा और सपा की सीटें लगभग बराबर लग रही थीं. भाजपा ७०-८० सीटों पर चल रही थी और कॉन्ग्रेस का भी कोई अच्छा हाल नहीं था. त्रिशंकु विधान सभा के संकेत लग रहे थे. लेकिन अंतिम परिणामों ने तो सब उल्टा-सीधा कर दिया. सपा को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हुआ. बसपा दूसरे स्थान पर, भाजपा तीसरे और कॉन्ग्रेस चौथे नंबर पर. एक प्रकार से यह अच्छा ही हुआ, नहीं तो या तो गठबंधन की सरकार बनती या राष्ट्रपति शासन लगता जिसकी संभावना कॉन्ग्रेस के एक वरिष्ठ नेता ने जतायी थी. पिछले लगभग एक साल से कॉन्ग्रेस के युवराज उ. प्र. में डेरा डाले थे, दलितों और मुसलमानों को रिझाने में लगे थे. वर्ष के प्रारंभ में, जयपुर के साहित्य मेले में सलमान रश्दी का

आना था किंतु दंगों का हौव्वा खड़ा करके उनका आना रोक दिया गया. यहां तक कि टेलीकॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से भाषण देने की भी अनुमति नहीं दी गयी. यह बिल्कुल उच्चतम न्यायालय द्वारा शाह बानो के पक्ष में दिये निर्णय को उलटने जैसा था. उन दिनों भी चुनाव होने वाले थे और तभी सलमान रश्दी की किताब "द सैतानिक वर्सेज़" पर बैन भी लगाया गया था. इस बार ४.५ और बाद में ९ प्र. श. आरक्षण का झुनझुना भी कोई काम न आ सका. यहां तक कि निर्वाचन आयोग के अधिकारों पर भी सवाल उठाये गये. पर कोई झांसा काम नहीं आया...और तो और सलमान खुर्शीद की पत्नी श्रीमती लुइस खुर्शीद भी अपने निर्वाचन क्षेत्र से नहीं जीत सकीं. रायबरेली और अमेठी की दस सीटों में से मात्र दो सीटों पर कॉन्ग्रेस जीत पायी. रायबरेली में तो एक भी सीट नहीं मिली. कॉन्ग्रेस का यह कहना कि उ. प्र. में संगठन मजबूत नहीं था सर्वथा ग़लत है. वास्तव में मुसलमान यह मानते हैं कि बाबरी ढांचे को गिराने में कॉन्ग्रेस की भी अहम भूमिका थी और आज भी उन्होंने कॉन्ग्रेस को माफ नहीं किया है. वर्तमान में कोई बड़ी सर्वमान्य केंद्रीय पार्टी न होने के कारण प्रत्येक प्रांत का जातीय व मजहबी समीकरण अलग-अलग हो गया है. पंजाब, उत्तराखंड, मणिपुर और गोवा में मुसलमानों की जनसंख्या इतनी नहीं है कि वे निर्णायक भूमिका अदा कर सकें. समाजवादी पार्टी की जीत का एक कारण उ. प्र. में अन्य किसी विकल्प का न होना था. सन २००७ में मुसलमान बसपा के साथ थे क्योंकि सपा ने कल्याण सिंह को गले लगाया था. इस बार वह ग़लती नहीं दोहरायी गयी. एक तरफ आज़म खान को दोबारा सपा में लेकर महासचिव बनाया, दूसरी ओर दिल्ली की जामा मस्जिद के शाही इमाम सैय्यद अहमद बुखारी साहब से सपा के नाम पर फतवा जारी करवाया गया. परिणामस्वरूप सपा के विधायकों में लगभग एक-तिहाई मुसलमान विधायक चुनकर आये. बाबा रामदेव और अन्ना हज़ारे की टीम ने भी लोगों को कॉन्ग्रेस से विमुख किया. यदि कॉन्ग्रेस की सीटें २२ से बढ़कर २७ हुई हैं तो इसका कारण चौधरी चरण सिंह के सुपुत्र अजित सिंह हैं, न कि युवराज राहुल. अभी सुनने में आया है कि बुखारी साहब चुनाव हारे हुए अपने दामाद के लिए मंत्रीपद मांग रहे हैं. "डील" के लिए मुलायम सिंह जी को इतना तो करना ही पड़ेगा! लेकिन मियां आज़म खान ऐसा नहीं चाहते.

उ. प्र. में सपा सरकार का पिछला रिकॉर्ड वहां के लोग भूल नहीं सकते. उन दिनों कानून और व्यवस्था पूरी तरह ध्वस्त थी. सुश्री मायावती को लखनऊ के सरकारी गेस्ट हाउस में जलाने की कोशिश की गयी थी. उत्तराखंड की मांग करने वाले आंदोलनकारियों का नरसंहार किया गया था, जिसमें महिलाएं भी थीं. परिक्षाओं में नकल करने की पूरी छूट थी – और यदि परिवारवाद की बात की जाये तो मुलायम सिंह जी के परिवार के सभी प्रत्याशी इस बार चुनकर आगये. उ. प्र. की जनता को नागनाथ और सांपनाथ में से चुनाव करना था तो उन्होंने सांपनाथ को चुना. देखना यह होगा कि रंगे हुए सियार का रंग कितने दिनों तक चढ़ा रहता है.

अब यदि यूपीए-२ की बात की जाये तो आज हर फ़ैसला रुका हुआ है. लाख आंधी तूफान आये हमारे प्रधानमंत्री किसी शुतुर्मुर्ग की तरह अपना सिर बालू में छिपा लेते हैं. तृणमुल कॉन्ग्रेस रोज घुड़की देती है किंतु गठबंधन की मज़बूरी आड़े आ जाती है. रेल्वे बजट ममता जी द्वारा नामज़द, उन्हीं की पार्टी के आदमी ने ही पेश किया लेकिन बिना कोई समय गंवाये विरोध सामने आ गया. अंततः दिनेश जी को इस्तीफा देना पड़ा. आये दिन कहीं न कहीं जमीन के आबंटन में घोटाले की खबरें, खनन संबंधी घोटालों के समाचार आ रहे हैं. सेना अध्यक्ष ने अलग मोर्चा खोला है. ऐसी खबरें आ रही हैं कि रक्षा-सामग्री के लगभग हर सौदे में कमीशन लिया जाता है. एक बोफर्स में कमीशन के खुलासे ने राजीव गांधी की सरकार गिरा दी थी, लेकिन अब सब आम हो गया है. ख़ास कुछ फ़र्क नहीं पड़ता. हर बात में तुरंत तर्क दिया जाता है कि यूपीए में यदि यह सब हो रहा है तो एनडीए में भी तो होता था. समाचार है कि बाबा रामदेव, अन्ना हज़ारे, सुब्रह्मण्यम स्वामी मिल कर कोई मुहिम चलाने वाले हैं और बहुत संभव है कि वर्ष के अंत तक मध्यावधि चुनावों की नौबत आ जाये!

●

थोड़े दिनों तक सब कुछ भूल जाइए, आईपीएल-५ शुरू हो चुका है. आनंद उठाइए. पूरी सरकार गुमसुम हो सुन्न पड़ी है. हम आप ही चिंता क्यों करें. सचिन तेंदूलकर के सौंवे सौ रन बनाने पर जश्न मनायें. इंग्लैंड में, आस्ट्रेलिया में हार गये तो क्या हुआ. पड़ोसी देश बंग्लादेश में तो सचिन ने रनों की गति धीमी रख कर सौंवा "टन" बना ही लिया, क्या यह बड़ी बात नहीं है ? मैच हार गये तो क्या हुआ ? अपना-सा मुंह लेकर घर वापस आये. शिवाजी के समय कहा जाने वाला एक वाक्य याद आ रहा है – "गढ़ आया पर सिंह गया." किंतु यहां उल्टा हो गया –"गढ़ गया पर सिंह आया." सुनने में आया है कि देश के लिए खेलने वाले सचिन अंगूठे की चोट ठीक कराने इंग्लैंड गये थे !

अरविंद

लेटर-बॉक्स

▶▶पत्रिका का अक्तू-दिसं. ११ वाला अंक मिला. संपादकीय में पत्रिका के अपने पैरों पर खड़ा होने वाली बात बहुत अच्छी लगी. पत्रिका का हृष्ट-पुष्ट होना, अपने आप में सक्षम होना, सभ्य समाज में स्थान पाना, यह सब शुभ लक्षण हैं.

संपादकीय में देश, समाज से जुड़े चिंतनीय मुद्दों की आपने सार्थक चर्चा की है. मनीऑर्डर वाली बात भी इस विभाग के लिए उचित सलाह है. देखते-देखते कितने परिवर्तन हो गये, अब फुटकर पैसे नहीं मिलते, रिफ़िल, पोस्टकार्ड, चाक आदि बाज़ार से ग़ायब हैं. यूज एंड थ्रो के युग में मां-बाप तक फेंके जा रहे हैं? हम रिफिल खोजते हैं, तो दुकानदार नया पेन दिखाता है. खैर... सुशांत सुप्रिय जी की कहानी बहुत अच्छी लगी. सरल सुवाच्य भाषा में, घोंघा बसंतों की ताज-पोशी का यथार्थ चित्रण है. अपनी क्षमता, योग्यता सिद्ध करने के लिए आदमी को बहुत मशक्कत करनी पड़ रही है.

डॉ. गिरी की कहानी पढ़ाई की ललक पर ग़रीबी के बादल का चित्रण है. संतोष तिवारी की मां से जुड़ी रचना आंखें नम कर गयी. कहना चाहती हूं कुछ रचनाओं में पर्याप्त निखार नहीं लगा. वैसे आपकी पत्रिका हिंदी जगत की स्तरीय पत्रिका है. इसके लिए आप समर्पित भी हैं.

शुभदा पांडेय

असम विश्वविद्यालय, शिलचर,असम-७८८०११

▶▶अक्तू.-दिसं. २०११ अंक मिला. 'कथाबिंब' के प्रकाशन के ३३वर्ष पूर्ण होने पर ढ़ेर सारी बधाई!

अपने पूरे प्रकाशन काल में 'कथाबिंब' ने रचनाओं के स्तर पर अपना एक विशिष्ट स्थान बनाये रखा, प्रारंभ से ही छपाई की सुविधा, छोटी पत्रिकाओं के लिए जब नाम मात्र को थी तब भी और आज भी. टाइप सेटिंग, प्रूफ़ जांच, संयोजन, ब्लॉक बनवाना, छपाई का स्तर बनाये रखना, बार-बार प्रेस के चक्कर काटना जैसे अनेक दुरूह कार्य संपादक को स्वयं करने पड़ते थे. आज प्रकाशन के क्षेत्र में काफ़ी विकास हुआ है और कंप्यूटर की वज़ह से काफ़ी सहूलियतें भी मिल रही हैं. काफ़ी कुछ सरल व सहज हो गया है फिर भी अपने दम पर निकलने वाली पत्रिकाओं के लिए कठिनाइयां कम नहीं हुईं, ऐसी स्थिति में आपका कथन, 'अब कहीं जाकर पत्रिका आर्थिक तौर पर आत्मनिर्भर हो पायी है,' से आपकी आत्मसंतुष्टि स्पष्ट रूप से झलक रही है. आपके द्वारा पत्रिका के लिए किया गया श्रम फलीभूत हुआ है, यह एक संपादक के लिए बहुत बड़ी बात है. ख़ासतौर पर अपने दम पर निकलने वाली पत्रिकाओं के संपादकों के लिए. निःसंदेह 'कथाबिंब' ने बिना कोई नारा दिये, बिना किसी विचारधारा का मुलम्मा ओढ़े निर्गुट रह कर साहित्यिक पत्रिकाओं में अपना एक अलग स्थान बनाया है, उसके पीछे आपकी, संपादिका मंजुश्री जी एवं पत्रिका के अन्य सहयोगियों की मेहनत रही है.

'कथाबिंब' में हमेशा (मैं भी लगभग २०-२२ वर्षों से पत्रिका देख पढ़ रहा हूं.) नवोदितों तथा स्थापित रचनाकारों को समान रूप से सम्मानपूर्वक स्थान मिला है. अतिश्योक्ति नहीं, कई नवोदितों को स्थापित करने, पहचान देने का महत्त्वपूर्ण कार्य भी 'कथाबिंब' द्वारा किया गया है.

ई-मेल द्वारा रचनाएं स्वीकार करने का आपका निर्णय भी एक अच्छा निर्णय है समय के अनुरूप ज़रूरी भी था. यह काफ़ी सुविधानजक है.

के. रवींद्र

एफ-६, पी.डब्ल्यू.डी कॉलोनी, कटोरा तालाब, रायपुर-४९२००१

▶▶ अक्तूबर-दिसंबर का (११६) अंक प्राप्त हुआ. आवरण पर सूर्य की लालिमा मेरे तन-बदन को ऊर्जा दे गयी और 'कथाबिंब' की रचनाओं को अलौकिक बधाई हो. 'कुछ कही, कुछ अनकही' तो पत्रिका की जान है. इसके बिना अंक अधूरा है, जैसे प्राण बिना शरीर. बहुत ही सुंदर और मन को छूते उदगार होते हैं. ३३ वर्ष पत्रिका ने पूरे किये, बधाई हो!

पाठक हितेश व्यास मुझे अक्षम्य और निर्मम मानते हैं क्योंकि मुझे सुदर्शन फ़ाकिर के स्वर्गीय होने का पता क्यों नहीं चला. मैं उनसे उनकी नादानी के लिए क्षमा

प्रार्थी हूं कि शायद उन्होंने न तो लेख को ध्यान से पढ़ा और न ही समझा. सुदर्शन एक फ़कीर था, हरफन मौला जो कहीं टिकता न था मानो बेचैन रुह जो भटकती रहती है. न उसने कभी अपनी पत्नी का जिक्र किया और न ही बच्चे का और मैं किसी की जाती ज़िंदगी को क्यों उधेड़ू जनाब! बंबई आइए, यहां के जीवन को जियें हितेश साहब तो आपको समझ आयेगा कि उनके मरने की ख़बर क्यों नहीं पहुंची मुझ तक. पहले टी. वी. चैनल नहीं थे. और न ही मीडिया का बाज़ार ग़र्म था. फ़ोन भी बड़ी मुश्किल से पैसा खिलाने के बाद मिलता था, कौन से युग में रहते हैं आप, मैं सब भुगत चुकी हूं.

कहानी "मैं कैसे हंसूं" आत्मकथा है लेखक की जिससे हर कोई वाकिफ़ है, कोई नयी बात नहीं. मत हंसो, कौन ज़बरदस्ती कर रहा है भई!

'कंबलदान' प्रशांत कुमार सिन्हा की बहुत मर्म छिपाये है? उच्च कोटि की लगी. इसे कहते हैं कहानी. 'शायद आसिफ भी...' सुंदर है, अच्छी लगी. बढ़िया रची गयी है, सत्य अनुभव की आधार शिला है. पहले बुद्धिजीवियों की ज़िंदगी का ख़ाका ऐसे ही रचा जाता था. फ़कीरी पर भी उनकी दुकान चलती थी, आजकल की तरह नहीं. सब अच्छा खाते-पीते लोग हैं. लघुकथा 'मुआवज़ा' बहुत ही मार्मिक है, कह लीजिए जीवन का आईना है.

सविता बजाज

पो. बॉक्स-१९७४३, जयराज नगर,
बोरिवली (प.), मुंबई-४०००९१

▶▶एक लंबे अंतराल के उपरांत पत्र लिख रहा हूं 'कथाबिंब' के कई उतार-चढ़ावों को मैंने १९८० के दशक से देखा है, आज 'कथाबिंब', परिष्कृत रूप से अपने हाथों पाकर अपने अतीत की स्मृतियों में खो सा गया हूं. निसंदेह मैंने पाया आज भी आप 'कथाबिंब' की सामग्री चयन में वही श्रम, ऊर्जा और तत्परता को परिलक्षित करा रहे हैं. अंक ११६ मेरे हाथों में है. एक सधी हुई वाक शैली में, जो आपके समय और श्रम के बहुत बड़े कनवैस को उजागर करता है. कहानियों में सभी कथाकार अच्छे लगे, किंतु सुशांत सुप्रिय, भाग्यश्री तथा प्रशांत सिन्हा की कहानियां ध्यान खींचती हैं. लघुकथा में आनंद बिल्थरे का जवाब नहीं है. यह श्रेय उनकी पैनी लेखन शैली को जाता है. ग़ज़लों में नसीम अख्तर, अनिल पठानकोठी, अंकित सफर अच्छे लगे. वीनस केशरी की ग़ज़लें जीवन के कटु सत्य को आकार देती हैं. अंक की अन्य सामग्री स्तरीय एवं पठनीय है. 'कथाबिंब' ने अपनी यात्रा के ३३ वर्ष पूर्ण कर लिये हैं, यह लघु-पत्रिका संसार की एक अविस्मरणीय घटना है.

चंदन अयोधी

परियोजना प्रशासक कार्यालय,
तामियां, छिंदवाड़ा (म. प्र.)

▶▶अचानक पड़ोसी के हाथ में 'कथाबिंब' की प्रति देखी. हिंदी में साहित्यिक पत्रिका देखकर पढ़ने का लोभ संवरण नहीं कर पायी. मुंबई की मिली-जुली या कहिए विदेशी संस्कृति के वातावरण में यह पत्रिका एक वसंत ऋतु की ठंडी बयार-सी लगी. किंचित आश्चर्य हुआ इतनी पठनीय हिंदी की साहित्यिक पत्रिका इतने वर्षों से विपरीत वातावरण में कैसे पल्लवित एवं पुष्पित हो रही है.

मैं एक हिंदी भाषा-भाषी प्रदेश उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश से आयी हूं. पिछले छः वर्षों से मैं मुंबई में निवास कर रही हूं अतः यहां के वातावरण में अभी तक घुलमिल नहीं पायी हूं. आपकी पत्रिका एक ही बैठक में पूरी पढ़ गयी. श्रेष्ठ स्तरीय पत्रिका प्रकाशन पर बधाई!

रश्मि रस्तोगी

४२, गिरनार, अणुशक्तिनगर, मुंबई-४०००९४

▶▶'कथाबिंब' का ११६ अंक मिला. 'कथाबिंब' अब वेबसाइट पर भी उपलब्ध है, जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई. सभी कहानियां पठनीय हैं तथा सभी स्तंभ पूर्व की भांति रोचक हैं. 'कुछ कही, कुछ अनकही' में आपने बहुत से सामायिक ज्वलंत प्रश्नों पर अपनी चिंता व्यक्त करते हुए पाठकों को चिंतन के लिए प्रेरित किया है.

'सागर-सीपी' में सुश्री रचना श्रीवास्तव जी का प्रश्न 'आपने कभी सोचा कि आप अपनी आत्मकथा लिखेंगी?' के लिए मैं क्षमा याचना के साथ विनम्रतापूर्वक इस त्रुटि के लिए ध्यान दिलाना चाहता हूं कि आत्मकथा के साथ 'अपनी' शब्द अटपटा लगता है.

कृष्ण सुकुमार

१५३/ए-८, सोलानी कुंज,
भा. प्रौ. संस्थान, रुड़की-२४७६६७

▶▶माह अक्तूं-दिस-११ की 'कथाबिंब' प्राप्त हुई. डूबते सूरज का प्रतिबिंब कथाबिंब का कलेवर, दृष्टि पड़ते ही मानस पर, समाज देश की आकृति को उकेरता है. विचारों की शृंखला भावनाओं को बांधने में समर्थ हुई है.

समय की धुरी पर परिवर्तन का पहिया कैसे भागता है?. कहानी 'मैं कैसे हंसूं?' सुशांत सुप्रिय जी की सर्वोत्तम विचारों की मार्मिक व्यथा है. पीड़ाओं के डायल्स पर नाचती योगिनियां, देश की विभिन्न खंडित तस्वीरें दिखाती हैं. कहती

हैं 'मैं कैसे हंसूं'. महात्मा गांधी की मूर्ति दीमक लगी... पूरी कहानी का शब्द-शब्द हृदय को झकझोरता है.

संपादकीय में 'कुछ कही-कुछ अनकही' ने सब कुछ कह डाला है. 'क्या मैं अन्ना हूं?' घनश्याम अग्रवाल जी की रचना—जब पेट ज़्यादा, रोटियां कम हों, रोटी छीनकर खायी जाती है. भ्रष्टाचार के खिलाफ़ सारा देश, तो भ्रष्टाचार करता कौन है? अच्छा सवाल है. बहुत अच्छा लगा बधाई! 'खौफ़' 'कांप रहा है आदमी' भयानक सच है. डॉ. इला प्रसाद का साक्षात्कार भी सत्य का स्वरूप दर्शाता है. काल के प्रवाह में उत्कृष्ट लेखन ही टिकता है. सागर-सीपी वार्ता, सागर मंथन बनी है. बहुत कुछ न कह, इतना कहूंगी, आज के समय में 'कथाबिंब' जैसे पत्रिकाओं व विचारों की अत्यंत, आवश्यकता है.

डॉ. माया सिंह 'माया'

१०१४, राजेंद्रनगर (बैंक कॉलोनी), उरई (उ. प्र.)

▶▶ कथाबिंब अंक ११६ मिला. आभार. ''टुकड़े-टुकड़े काग़ज़'' कहानी अनुकरणीय, सराहनीय, प्रशंसनीय है. भाग्यश्री गिरी दीदी को इस उत्कृष्ट कहानी हेतु साधुवाद एवं उनकी सशक्त क़लम को नमन. मैं जब गांवों के कन्या स्कूलों में समय प्रबंधन, कैरियर प्लानिंग व परीक्षा की तैयारी पर वार्ता देने जाता हूं, तो लड़कियों को निरंतर पढ़ाई करते रहने के लिए प्रेरित करता हूं. शिक्षा एक अनमोल गहना है. नन्हें भामाशाह की भूमिका निभाकर ग़रीब मेधावी छात्राओं हेतु फ़ीस, ड्रेस, स्टेशनरी देता रहता हूं. कई छात्राएं परीक्षा में सफल होने पर बेसन के चार लड्डू लेकर मेरे घर आशीर्वाद लेने आती हैं तो उन प्यार-स्नेह के लड्डुओं के समक्ष मुझे अपने फ़्रिज़ में रखी काजू-बादाम की बरफी फीकी लगती है. 'टुकड़े-टुकड़े काग़ज़' की नायिका इंटरव्यू तक पहुंच गयी. उसके आत्मविश्वास, स्वाभिमान, मेहनत को प्रणाम. मुझे स्मरण हो रहा है कि सेवा-निवृत्ति पर मैंने बालिका स्कूल में कार्डिगन पहनाये तो ठंड से ठिठुरती छात्राओं एवं उनकी अध्यापिकाओं की आंखें भीग गयी थीं. कहानी के पीटी टीचर धन्यवाद के पात्र हैं. जिन्होंने एक प्रतिभा को पहचाना एवं देश को एक शिक्षिता देकर गुरू-ऋण चुकाया. इस कहानी से कई पीटी टीचर, अन्य टीचर व बालिकाएं प्रेरणा लेंगी तो लेखिका दीदी की मेहनत सार्थक होगी.

दिलीप भाटिया,

न्यू मार्केट, रावतभाटा-३२३३०७

▶▶ 'कथाबिंब' के तीन दशक तक प्रकाशित होते रहने पर बधाई देता हूं. इतने लंबे समय तक किसी अव्यावसायिक पत्रिका को प्रकाशित करते रहने पर सलाम करने को जी चाहता है. मैं भी चाहे नवांशहर (पंजाब), मोहाली, चंडीगढ़ या हिसार रहा आपने 'कथाबिंब' की यात्रा में मुझे हमसफ़र बनाये रखा. अनेक रचनाकारों को पढ़ने का अवसर मिलता रहा. बहुत बड़े पूंजीयाति घरानों की पत्रिकाएं बंद हो गयीं, नयी पत्रिकाएं भी आ गयीं, पर 'कथाबिंब' के प्रकाशन का सिलसिला जारी देखकर सुखद अनुभूति मिलती है.

कमलेश भारतीय

हरियाणा ग्रंथ अकादमी, अकादमी भवन,
पी-१६, सेक्टर-१४, पंचकूला-१३४११३

▶▶ आज के राजनैतिक परिवेश में श्री प्रशांत कुमार सिन्हा द्वारा लिखित कहानी 'कंबलदान' सटीक व्याख्या करती है. राजनेता सत्ता प्राप्ति के लिए क्या-क्या हथकंडे अपनाते हैं, पता चलता है. ग़रीब व्यक्ति जरा से सुख के लिए किस प्रकार परेशान होता है और अंत में यह सुविधा भी उसे नहीं मिल पाती. कहानी के नायक भीखन का सही चित्रण किया गया है. आज देश ऐसे भीखनों से भरा पड़ा है. सुशांत सुप्रिय की कहानी 'मैं कैसे हंसूं' मार्मिक है. जागरूक एवं सेवा भाव रखने वाला व्यक्ति आज के परिवेश में दुखी हो सकता है, हंस नहीं सकता.

के. के. शर्मा

३४१, कृष्ण नगर, रुड़की रोड, मेरठ (उ. प्र.)

▶▶ 'कथाबिंब' का वर्ष २०११ का अंतिम अंक मिला. हर बार की तरह इस बार का अंक भी अपनी कथा-कहानियों व ग़ज़ल-कविताओं के लिए मील का पत्थर साबित हुआ. जिस तरह पिछले अंक में अग्रज श्री राजेंद्र वर्मा की कहानी 'नवारंभ' की सबने भूरि-भूरि प्रशंसा की, उसी तरह इस अंक के कहानीकारा द्वय डॉ. निरुपमा राय व डॉ. भाग्यश्री गिरी की कहानियां 'राम लखन का...' व 'टुकड़े-टुकड़े काग़ज़' न केवल पठनीय हैं बल्कि कारुणिक व स्नेह-बंधन के साथ-साथ संबंधों की प्रगाढ़ता को बड़ी बारीकी से महसूसने का अवसर प्रदान करती हैं, हालांकि, डॉ. गिरी की कहानी हिंदी में लिखी उनकी पहली कहानी है. फिर भी कहानीपन की शैली पर मुग्ध होना लाज़िमी है. दोनों कहानियां लाजबाब, काबिले जिक्र. आलोक कुमार सातपूते व आनंद बिल्थरे की लघुकथाओं के क्या कहने? घनश्याम अग्रवाल की कविताएं अच्छी हैं. 'क्या सच नहीं?' की कविता : २ मैंने 'शुक्रवार' पत्रिका के 'पाठकीय' के तहत पढ़ी थी.

तारकेश्वर शर्मा 'विकास'

खड़गपुर (पश्चिम बंगाल)

कहानी

कैकेयी-कथा

✍ *हरिप्रकाश त्यागी*

मैं कैकेयी हूं.

मैं कैकेयी अवधपति दशरथ की प्रिय रानी, कैकय नरेश अश्वपति की दुलारी पुत्री एवं रामानुज भरत की मां हूं.

कवियों, एवं चिंतकों ने मेरी भूमिका का इतना अपमान एवं उपहास किया है कि मैं राम-कथा की खलनायिका बन गयी हूं. साहित्यकारों का शब्द विलास अनेक बार किसी पात्र को उभरने ही नहीं देता. हर लेखक अंतत: स्वयं की श्रद्धा एवं आस्था का क़ैदी बन जाता है. इतना ही नहीं अनेक बार सत्य भी उनके दृष्टिकोण के कारागार में घुटकर रह जाता है. सदियों मैंने इंतज़ार किया कि कोई मेरे पात्र का भी सही आकलन करे लेकिन अंधश्रद्धा एवं पूर्वाग्रहों ने मेरे चरित्र को उभरने ही नहीं दिया. जगत की रीत ही है कि मरे को सब मारते हैं. इसी कारण आज अपनी व्यथा-कथा जगत को सुनाकर, सदियों से अपने हृदय पर पड़े बोझ को हल्का करना चाहती हूं.

मुझे अब भी याद है जब राजा दशरथ मेरे पिता अश्वपति के निमंत्रण पर कैकय देश पधारे थे. उस दिन मेरे पिता एवं अनेक सभासदों के साथ मैं भी राजद्वार पर उनकी अगवानी के लिए खड़ी थी. इक्ष्वाकु वंश के महान राजाओं, उनके पराक्रम, ओज, दानवीरता एवं सत्यनेम की कथाएं उन दिनों घर-घर में सुनने को मिलती थीं. लोग इन कथाओं को बड़े चाव से सुनते थे. मैं भी इन कथाओं से बहुत प्रभावित थी. कहते हैं इसी वंश के राजा हरिश्चंद्र ने सत्य की राह पर अपना राज्य, सुख, भार्या एवं पुत्र को तृण की तरह त्याग दिया. राजा शिवि ने शरणागत कबूतर को बचाने के लिए एक बाज को अपने शरीर का मांस काटकर दे दिया. इसी वंश के राजा अलर्क ने एक याचक को अपनी आंखें उपहार में दे दीं. मेरा सौभाग्य था कि ऐसे महान वंश के उत्तराधिकारी, शूरवीर राजा दशरथ के स्वागत का सौभाग्य मुझे मिला. राजा दशरथ जब अपने सेवकों के साथ राजद्वार पहुंचे तो चहुंओर कोलाहल मच गया. सभी उनकी एक झलक पाने को आतुर थे. वे जब रथ से उतरे तो उन्हें देखकर मैं ठगी-सी रह गयी. राजा रूप-शौर्य एवं दर्प की त्रिवेणी थे. रथ से उतरते समय वे ऐसे दृष्टिगत हो रहे थे मानो साक्षात् सूर्य पूर्व दिशा से उद्भासित हो रहा हो. मेरे पिता आगे बढ़कर उन्हें राजद्वार तक लेकर आये. विप्र समुदाय ने मांगलिक वचन सुनाकर उनका अभिनंदन किया. मेरे पिता ने राजद्वार पर ही अन्य सभासदों के साथ राजा दशरथ से मेरा भी परिचय करवाया. मेरा परिचय जानकर वे अति प्रसन्न हुए.

अतिथि-कक्ष में राजा दशरथ के स्वागत की ज़िम्मेदारी मुझे ही सौंपी गयी. अर्घ्य, पाद्य, स्वागत संभाषण एवं अल्पाहार के पश्चात् उनके कैकय प्रवास तक मैं उनके समीप ही रही. मैंने पूरे मनोयोग से उनकी सेवा की एवं उनकी हर सुविधा का ध्यान रखा. मेरे

हरिप्रकाश त्यागी

५ नवंबर १९५५:
एम. कॉम, सी. ए. आई. आई. बी, रिटायर्ड बैंक अधिकारी.

लेखन : *अब तक करीब १०५ कहानियां लिखीं, करीब ४० कहानियां राष्ट्रीय स्तर के समाचार पत्रों/पत्रिकाओं में प्रकाशित. राजस्थान साहित्य अकादमी की मासिक पत्रिका 'मधुमति' में अब तक दस कहानियां प्रकाशत. राष्ट्रीय स्तर के विभिन्न अख़बारों में सामयिक, राजनैतिक एवं अन्य विषयों पर अब तक करीब ५० आलेख प्रकाशित.*

प्रकाशन : *'अगोचर', 'सांप-सीढ़ी', 'आधार', 'पीढ़ियां, 'पहली बरसात', 'माटी के दिये', 'नेति-नेति' (कहानी संग्रह). कतिपय कहानियों का अंग्रेज़ी अनुवाद 'ऑन द विंग्स ऑफ कुरजां' एवं प्रतिनिधि कहानियां श्री हाल ही में प्रकाशित हुई हैं. राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित राजस्थान के*

सेवाभाव से राजा इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने अपने साथ आये मंत्री को बुलाकर कहा कि मेरे रूप, गुण एवं सौंदर्य ने उनका मन मोह लिया है. मंत्री ने जब उन्हें बताया कि यह कन्या रूपवती ही नहीं, शस्त्र संचालन एवं सारथ्य विद्या में भी निपुण है तो राजा अभिभूत हो गये उन्होंने वहीं उसी मंत्री के हाथों मेरे पिता के पास प्रस्ताव भेजा कि वे मुझसे विवाह करने को इच्छुक हैं.

राजा दशरथ के प्रस्ताव ने मेरे पिता को चिंता में डाल दिया. मैं अपने पिता के आंखों की पुतली थी. वे मेरे पिता ही नहीं माता भी थे क्योंकि मेरी माता को तो उन्होंने बचपन में ही गृहकलह से कुपित होकर देश निकाला दे दिया था. मैं जब बड़ी हुई तो पुरुष एवं पति की इस क्रूरता एवं हठधर्मिता को पल-पल धिक्कारती थी. उनके कोप ने मेरा मातृस्नेह छीन लिया. मेरे मन-मस्तिष्क में इस घटना का इतना गहरा आघात हुआ कि पुरुष वर्ग के प्रति मेरे मन में स्वाभाविक रोष ने जन्म ले लिया.

राजा दशरथ के प्रस्ताव पर मेरे पिता बहुत देर तक चिंतन करते रहे. उन दिनों कौशल एक शक्तिशाली राज्य था एवं कैकय की उनसे मैत्री संधि होने के कारण कैकय राज्य भी शक्तिशाली राज्यों में माना जाता था. मेरे पिता का असमंजस इस बात को लेकर भी था कि राजा दशरथ के पहले से ही कौशल्या एवं सुमित्रा दो रानियां हैं. वे दोनों भी गुणी एवं प्रतिभावान हैं. ऐसे में क्या मेरी पुत्री का वर्चस्व बन पायेगा? वे दशरथ को ना कहने का साहस भी नहीं जुटा पा रहे थे. इसी उलझन के चलते उन्होंने मुझे अपने कक्ष में बुलाया एवं राजा दशरथ के प्रस्ताव पर सहमति मांगी. अपने पिता से दशरथ का प्रस्ताव सुनकर मैं हतप्रभ रह गयी. क्या मुझे एक ऐसे राजा से विवाह करना होगा जिसके पहले से दो रानियां हैं? पुरुष की क्रूरता मेरे मन-मस्तिष्क में पहले से पैठी थी, इस घटना ने मेरे पूर्वाग्रहों को और दृढ़ कर दिया. मैं पिता के समक्ष चुपचाप खड़ी रही. जब पिता ने मुझसे पुन: पूछा तो मैंने इतना ही कहा, ''पितृवर! अविवाहित कन्या पिता के आधीन होती है. आपकी आज्ञा को शिरोधार्य करने में ही मेरा कल्याण है!'' इतना कहकर मैं तेज़ी से चलकर अपने कक्ष में आयी एवं तकिये में सर रखकर फूट-फूट कर रोने लगी. मेरे मन में एक सुषुप्त विद्रोह ने घर कर लिया कि अवसर मिला तो मैं भी पुरुषों को उनकी क्रूरता का कड़ा दंड दूंगी.

मेरे पिता एक कुशल राजनीतिज्ञ थे. दशरथ के प्रस्ताव का उत्तर देते हुए उन्होंने मंत्री को यह कहा कि वे कैकेयी के विवाह पर तभी सहमति देंगे जब दशरथ वचन दें कि कैकेयी का पुत्र अयोध्या का उत्तराधिकारी होगा. राजा ने यह वचन सहज ही दे दिया, क्योंकि पूर्व दोनों रानियों के साथ वर्षों रहने के पश्चात् भी उन्हें पुत्र सुख नहीं मिला था. राजा को लगा मुझसे विवाह कर कदाचित् उनके पुत्र प्राप्ति का चिर मनोरथ पूरा हो जाय. राजा भवितव्यता से अनजान थे. धूमधाम से विवाह कर मेरे पिता ने मुझे भारी मन से विदा किया.

अयोध्या पहुंचने पर कौशल्या एवं सुमित्रा दोनों ने मेरी अगवानी की. दोनों के मृदु व्यवहार से मुझे लगा ही नहीं कि वे मेरी सौतें हैं. दोनों मुझे अपनी छोटी बहन की तरह रखती थीं. मेरे साथ कैकय से आयी दासी मंथरा भी मेरी हर सुविधा का ध्यान रखती थी. वह मेरी अनुचर ही नहीं गुप्तचर भी थी एवं मुझे महल एवं नगर दोनों के समाचार समय-समय पर देती रहती थी. मंथरा की पीठ पर बचपन से ही कूबड़ था एवं वह

विशिष्ट कथाकारों का रचना संग्रह 'कहानी दर कहानी' में रचना प्रकाशित.

सम्मान : *सृजनात्मक संतुष्टि संस्थान (जोधपुर), राजस्थान के यूनेस्को चैप्टर, शब्द संस्कृति (जोधपुर), अखिल भारतीय साहित्य परिषद द्वारा सम्मानित. पंजाब कला साहित्य अकादमी, उत्तर-पूर्व अकादमी द्वारा 'विशिष्ट साहित्यकार' सम्मान. भागलपुर हिंदी विद्यापीठ द्वारा विद्यावाचस्पति सम्मान.*

सी-१३६, प्रथम विस्तार,
कमला नेहरू नगर,
जोधपुर.
फ़ो : ९४१४१३२४८३

शारीरिक रूप से अशक्त भी थी तथापि उसके गुणों से प्रभावित होकर मैंने उसे कौशल साथ लाने का निर्णय लिया था. मैं बचपन से जानती थी कि हर नारी की पीठ पर एक कूबड़ होता है—शारीरिक अथवा मानसिक. मानसिक कूबड़ को क्रूर पुरुष जन्म देते हैं एवं उसे ढोना हर स्त्री की नियति है. नि:शक्तजनों विशेषत: नि:शक्त नारियों के प्रति मेरे मन में बचपन से ही अनुराग एवं सहानुभूति थी.

राजा दशरथ युद्ध कौशल में तो निपुण थे ही, उनका प्रणयकौशल भी मुंह चढ़कर बोलता था. स्त्रियों को रिझाने की कला में वे सिद्धहस्त थे. उनकी प्रेम-पारंगतता देखते ही बनती थी. विशालाक्षी! कमलनयने! सुमध्यमे! शुभे! आनंदिते! गर्विते! - आदि संबोधनों का प्रयोग कर वे मेरा मन मोह लेते थे. मैंने भी उन्हें अपने रूप-पाश में यूं बद्ध कर लिया था जैसे कमलिनी भ्रमर को बद्ध कर लेती है. मेरे कामबाणों से बिद्ध वे अनेक बार मेरे कक्ष में आकर मुझसे प्रणय याचना करते थे. उनकी काम परवशता एवं अकुलाहट का मैं मन ही मन आनंद लेती थी. समागम के पश्चात् वे मुझे प्रणयचातुरी एवं संभोगचातुरी जैसे अलंकारों से विभूषित करते थे. शीघ्र ही मैं उनकी प्रिय राजमहिषी एवं अयोध्या की सर्वाधिक प्रभावशाली रानी बन गयी. यहां तक कि राजा नगर के बाहर शिकार पर जाते तो मुझे साथ ले जाते थे. मुझसे घड़ी भर का बिछोह भी उन्हें असहनीय था.

राजा दशरथ का शौर्य, पराक्रम एवं शस्त्रलाघव अद्‌भुत था. उनके बलिष्ठ कंधे, सुपुष्ट भुजाएं, चौड़ी छाती एवं बड़ी-बड़ी आंखें देखकर ही अनेक सूरमा कांप जाते थे. धनुष कंधे पर रखकर जब वे रथ पर चढ़ते तो विधर्मियों के दिल दहल जाते थे. देवताओं का राजा इंद्र भी उनके शौर्य एवं साहस का लोहा मानता थे.

एक बार शंबरासुर नाम के असुर से युद्ध करने के लिए राजा इंद्र ने दशरथ से सहायता मांगी. शंबरासुर एक क्रूर आक्रांता था. देवता उसके साथ अनेक लड़ाइयां लड़कर थक चुके थे. इस बार फिर उसने इंद्र को अमरावती रणक्षेत्र में ललकारा था. राजा दशरथ जब युद्ध के लिए जाने लगे तो मेरे अनुरोध पर उन्होंने मुझे भी अपने साथ ले लिया. शस्त्र संचालन में मेरी दक्षता एवं मेरे सारथ्य ज्ञान पर उन्हें गर्व था.

ओह! उस युद्ध में कैसी मार-काट मची थी. राजा दशरथ ने अपने तीक्ष्ण बाणों के अचूक प्रहार से अनेक असुरों को मार डाला. असुरों के कोलाहल को सुनकर शंबरासुर स्वयं राजा दशरथ के सम्मुख आ गया. उस समय मैं रथ के पिछले भाग में राजा के समीप बैठी थी. युद्ध में शंबरासुर परास्त होने लगा तो उस विधर्मी ने दशरथ के सारथी को मार डाला. सारथी के मरते ही दशरथ चिंतामग्न हो गये. उसी समय मैंने राजा से कहा, ''कैकेयी के जीवित रहते आपको चिंता करने की आवश्यकता नहीं है. आज आपका सारथ्य मैं करूंगी!'' इतना कहकर प्राणों की परवाह किये बिना मैं आगे बढ़ी एवं सारथी के स्थान पर बैठकर घोड़ों की लगाम अपने हाथों में ले ली. मेरे सारथ्य कौशल को देख शंबरासुर दंग रह गया. क्रुद्ध शंबरासुर ने तब एक तीक्ष्ण तीर रथ के बांये पहिये पर चलाया एवं देखते ही देखते पहिया मिट्टी में धंस गया. रथ को धंसते देख कौशलेश का धैर्य डगमगा गया. अपनी विजय को सन्निकट देख शंबरासुर अट्टहास करने लगा. निश्चय ही राजा के प्राण अब संकट में थे. मेरे सारथ्य की भी आज परीक्षा थी. अपलक मैं रथ से नीचे कूदी एवं भीषण बाणवर्षा के बीच धंसे हुए रथ को ज़मीन से निकाला. रथ के स्थिर होते-होते शंबरासुर ने राजा दशरथ को बाणवर्षा से लहुलूहान कर मूर्छित कर दिया. मैंने तब तलवार हाथ में लेकर उसे पुकारा, ''रे अधम! अब तू नहीं बचेगा.'' मैं आगे बढ़ी ही थी कि राजा पुन: होश में आये. इस बार उन्होंने अद्‌भुत रणकौशल का प्रदर्शन किया. मुझे घायल देख वे क्रोध से फुफकार उठे. उनकी आंखों में अंगारे दहकने लगे. कुपित दशरथ ने तब ऐसी बाणवर्षा की कि शंबरासुर सेना सहित रण छोड़कर भाग खड़ा हुआ. इस युद्ध में मेरी हथेलियों में गहरी चोट लगी यहां तक कि मेरी कनिष्ठा अंगुली की हड्डी तक टूट गयी. इतना होते हुए भी मैं रण से विमुख नहीं हुई.

युद्ध में मेरी भूमिका से राजा इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने मुझे दो वर मांगने को कहा. उस समय उनका तन-मन मेरे अहसान से उपकृत था. मैंने राजा को प्रत्युत्तर में यही कहा, ''राजन्! पति सेवा से बढ़कर स्त्री के लिए कोई धर्म नहीं है. मैंने वरदान जैसा कोई काम नहीं किया. आपकी रक्षा करना मेरा धर्म था. एक क्षत्राणी के लिए इससे अधिक गौरव की बात और क्या हो सकती है. मेरा अहोभाग्य कि यह गौरव आपने मुझे दिया!'' मेरे उत्तर से अभिभूत राजा ने

कहा, ''कैकेयी! तुम्हारे दो वरदान मेरे पास धरोहर रूप में सुरक्षित हैं. जब उचित लगे मांग लेना!''

कालांतर में पुत्रेष्टि यज्ञ के पश्चात् कौशल्या को राम, मुझे भरत तथा सुमित्रा को लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न पुत्र रत्न के रूप में प्राप्त हुए. एक साथ चार पुत्रों को प्राप्त कर राजा खिल उठे थे. चारों भाइयों में बचपन से ही अगाध स्नेह था. राम तो सबकी आंखों के तारे थे. मुझे तो वे प्राणों से अधिक प्रिय थे.

जानकी विवाह के कुछ माह पश्चात् राम एक बार मुझसे अकेले मिलने आये. हम दोनों के बीच सार्थक विषयों पर अनेक बार चर्चा होती थी. राम सत्यप्रतिज्ञ एवं धर्मनिष्ठ थे. हर विषय पर उनका विवेचन सटीक होता था. इसी चर्चा के बीच एक बार मैंने उनसे पूछा, ''राघव! आपने ताड़कवन में ताड़का जैसी असुरा को कैसे मारा? ऋषि यज्ञों में विघ्न डालने वाले भयानक राक्षसों को कैसे हत किया? आपके अंगुष्ठ मात्र के स्पर्श से अहिल्या पत्थर से स्त्री कैसे बन गयी? दुर्जेय शिवधनुष, जिसे बड़े-बड़े योद्धा एवं महारथी हिला तक नहीं सके, आपने क्षणमात्र में उठाकर कैसे तोड़ दिया? असुरों के विनाश के लिए विश्वामित्र ने आपका ही चयन क्यों किया? राम! कहीं तुम नर रूप में नारायण तो नहीं हो!'' राम की आंखों में तब एक गहरा रहस्य उतर आया था. मेरे गूढ़ प्रश्न के मर्म को छुपाते हुए उन्होंने यही उत्तर दिया, ''मैं तो एक साधारण मानव हूं. इन असाधारण कार्यों को अंजाम तो मैंने आपके आशीर्वाद के बल से दिया है. मां! मेरा तो जन्म ही पृथ्वी से राक्षसों के शमन के लिए हुआ है. मुझे पूरा विश्वास है इस कार्य को सिद्ध करने में आप सहयोग देंगी.'' मैं कुछ और कहती तभी एक सेवक दशरथ का संदेश लेकर आया कि उन्हें राजा बुला रहे हैं. पिता का संदेश पाकर वे एक पल भी वहां नहीं रुके.

राम के राज्याभिषेक का संदेश जब मंथरा ने मुझे सुनाया तो हर्ष पुलकित मेरी आंखों से अश्रु बह गये. क्या सचमुच प्राणप्रिय राम राजा बनेंगे? मेरे हृदय में उमड़ते हर्ष के समुद्र को मैं रोक न सकी. मैंने मंथरा को अंक में भरकर कहा, ''तुम कितना शुभ समाचार लायी हो. मैं तुम्हें आज एक वरदान देती हूं. तुम जब चाहे अपना अभीष्ट मांग लेना.'' आश्चर्य! मेरे वरदान से कृतार्थ होने की बजाय मंथरा तैश में आ गयी एवं कुपित होकर बोली, ''महारानी! आपके समक्ष अक्षय विनाश उपस्थित हुआ है. अंतर सिर्फ़ इतना है कि मैं इसे देख पा रही हूं एवं आप नहीं. आप पुरुषों की विशेषत: अपने पति की क्रूरता एवं चतुराई को समझ नहीं पातीं. छल-बल में पुरुषों का कोई सानी नहीं होता. क्या आप देख नहीं पा रहीं कि राजा दशरथ ने भरत एवं शत्रुघ्न को छल से ननसाल मात्र इस कारण भेजा है कि राम का राज्याभिषेक सुगमता से हो जाय? कौशल्या कहे या ना कहे वह आपके प्रभाव एवं सौतिया डाह से पीड़ित तो है ही. आप इस बात को क्यों नहीं समझ पा रहीं कि राज्याभिषेक के पश्चात् कौशल्या राजरानी तथा तुम एवं भरत दोनों उसके दास बन जाओगे. दास क्या कभी स्वाभिमान से जीते हैं? इस राज्याभिषेक के पश्चात् तुम्हारा वर्चस्व क्या वही रह पायेगा जो आज है? क्या महाराज ने अपनी योजना की किंचित जानकारी भी आपको दी? तुम्हारे पिता अश्वपति को दिया वचन राजा क्योंकर भूल गये?''

मंथरा की बातें सुनकर मैं क्षुब्ध हो उठी. क्रोध आवेश में मैं केले के पत्ते की तरह कांपने लगी. क्या कैकेयी चाकरी करेगी? क्या भरत दासत्व करेंगे? माता सब कुछ सह सकती है पर अपने पुत्र का पतन नहीं सह सकती. मैं चीखकर बोली, ''घरफोड़ी! तू कैसी बातें कर रही है? अब ऐसा कहा तो जीभ निकलवा दूंगी!''

मैंने मंथरा को भला-बुरा तो कह दिया लेकिन अपने शोक और आवेश को न रोक सकी. पुरुषों की क्रूरता एवं छल के प्रति पैठा पूर्वाग्रह वर्षाकाल के काले मेघों की तरह मेरे मन-व्योम पर छा गया. क्या मेरी ममता इतनी असहाय है कि मैं अपने पुत्र का पराभव एवं दासत्व देखूंगी?

मुझे चिंतामग्न देख मंथरा ने मेरे कंधे पर हाथ रखकर जब यह कहा कि वह तो मेरा हित-चिंतन ही कर रही है, राज्य राम को मिले या भरत को वह तो चेरी ही रहेगी, तो मेरी बुद्धि उलट गयी. मैंने उसी पल शंबरासुर युद्ध के समय राजा द्वारा दिये दो वचनों को मांगने की ठान ली.

प्रणयातुर राजा उस रात जब राजतिलक का समाचार देने आये तो मैं कोपभवन में थी. उस दिन उनके मन में समागम की तीव्र उत्कंठा भी थी. कामातुर राजा मुझे कोपभवन में देख सहम गये. वे धीरे-धीरे मेरे समीप आये

❖❖❖

ग़ज़लें

✍ नूर मुहम्मद 'नूर'

मेरा सच बोलना, शायद बुरा था,
तो क्या मैं इसलिए भी सिरफिरा था ।

हज़ारों गालियां सुननी पड़ी थीं,
मैं अपने आप से जब भी मिला था ।

थी सूखी दहनियां सारी की सारी,
मगर मैं पेड़ अंदर से हरा था ।

था सहरा दूर तक, चारों तरफ भी,
मैं वहां फूल सा लेकिन खिला था ।

रहा था बेंच वो मन के अंधेरे,
अभी मैं 'नूर' से फक्त ही मिला था ।

जो करना था वही तो कर रहा हूं,
मैं अपना दिल ग़मों से भर रहा हूं ।

अभी क्या हूं बहुत मुश्किल है कहना,
कभी कंधे पे मैं भी सर रहा हूं ।

न जाने क्या कहेंगे आप इसको,
न ढ़ंग से जी रहा ना मर रहा हूं ।

मैं कुछ पाने कमाने के सफ़र में,
फ़क्त ग़ज़लों से जेबें भर रहा हूं ।

निडर है जबकि सब अलफाज़ मेरे,
मगर मैं हूं कि अब भी डर रहा हूं ।

✆ **सी.सी.एम. क्लेम्स ला, दक्षिण पूर्व रेलवे, ३ कोयला घाट स्ट्रीट, कोलकाता-७०००००१**

एवं बोले, ''कैकेयी! किस अभागे ने तुम्हें रुष्ट करने का साहस किया है? किसका कटा हुआ सिर आज तुम अपने चरणों में चाहती हो? आज किसकी उन्नति एवं किसकी अवनति होने वाली है?''

सत्य एवं धर्म की पताका फहराने वाले रघुवंश के एक राजा के मुंह से ऐसे दीन वचन सुनकर मैंने मन ही मन सोचा कि क्या एक राजा को इतना कामासक्त होना चाहिए? चौथपन में ऐसा व्यवहार करने वाला राजा क्या कभी मुक्तिपथ पर जा सकेगा? स्त्री, पुरुष के धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष चारों का सेतु है.

मैंने उसी समय राजा से दो वरदान मांग लिये, प्रथम भरत को राज्याभिषेक एवं द्वितीय तापसी वेश में चौदह वर्ष तक राम का वन गमन.

मेरे वचन मांगते ही राजा का चेहरा ऐसा बदरंग हो गया जैसे किसी वृक्ष पर बिजली गिर गयी हो. उनकी नारी आसक्ति एवं काम क्षण भर में गिर गये. उनके मुक्तिपथ का अवरोध अब मात्र पुत्र मोह था. राम के वनगमन के पश्चात् जब उन्होंने देहत्याग की तो वे इस मोह से भी छूट गये. काम एवं मोह से विरत राजा उस लोक में चले गये जिस लोक में जाने की महर्षि एवं ब्रह्मर्षिजन तक आकांक्षा करते हैं.

वनगमन के पश्चात् राम ने, जैसा कि उन्होंने मुझसे कहा था, पृथ्वी को निशाचरहीन कर दिया. रावण, कुंभकरण एवं अन्य अनेक निशाचर उनके हाथों मारे गये. उनकी वाणी भला कैसे निष्फल होती. अनायास, अप्रत्यक्ष रूप से उनके इस महती कार्य में मैं भी सहयोगी बनी, हालांकि यह इतर बात है कि इस कार्य को सिद्ध करने में अपयश एवं उपहास सदैव के लिए मेरे नाम के साथ जुड़ गया.

मुझे इसकी परवाह नहीं. तितिक्षु लोककल्याण के लिए क्या नहीं करते?

यह कलंक मेरे अवसान के पश्चात् भी मेरे नाम के साथ चिपटा रहा. सदियां बीत गयीं किसी ने अपनी पुत्री का नाम कैकेयी नहीं रखा.

बहुत कम लोग जानते हैं कि मंथरा की बुद्धि भ्रष्ट करने सरस्वती स्वयं देवों के अनुरोध पर अयोध्या आयी थीं. देव राक्षसों के वध के लिए राम को निमित्त बनाना चाहते थे. देवों की इस करतूत का मैं एवं मंथरा दोनों शिकार हुईं.

यह तथ्य भी कुछ लोग ही जानते हैं कि राम-काल में मेरी भूमिका से प्रसन्न भगवान विष्णु ने मात्र मुझे ही मोक्ष एवं चिर वैकुंठ दोनों का वरदान दिया था.

अपनी कथा-व्यथा कहकर मैं, कैकेयी आज प्रफुल्लित हूं.

❖❖❖

गीत

ऋतुराज

✍ डॉ. रामदुलारे पाठक

(डॉ. पाठक प्राचीन परंपरा के बहुत ही वरिष्ठ कवि हैं. माटी की गंध लिये उनकी यह अप्रतिम रचना भाषा-सौष्ठव व भाषा-सौंदर्य का एक श्रेष्ठ उदाहरण है. - सं.)

(१)

सुरभिमय मदिरा मलय की, उर-निलय उन्मत्त करती,
अंग-अंग अनंग की, अनुभूति, रंग-तरंग भरती;
किसलयों पर सर्ग का, अनुराग राग-पराग लेकर,
विहंसती, कलिका-अधर को, रश्मि-रवि अरुणाभ करती;
वल्लरी बाहें पसारे ललक चढ़ती वय-उभरती,
परिमली तन से लिपट कर, मत्त-तरु के गाल मलती;
आ रहा कोई स्वजन है, मलय का ले व्यजन-सा वर,
इसलिए ऋतुराज ने भी, पग बढ़ाये हैं बहक कर ।

(२)

छिप गया कोई अचानक, रहसि में मेरे हृदय के,
छू दिया मृदु पोर से, सोये हुए मृग को प्रणय के;
अलस नेत्रों में भरे, उन्मत्त-उर उच्छ्वास लेकर,
पग बढ़ाये कुंज में, घुसती मलय का साथ देकर;
खिल उठी मृग-नाभ पूरित, गंध से अभिसार-सारी
बस प्रतीक्षा में हुए, प्रहरी-पुरुष के नयन भारी;
चंद्रिका-सी यष्टि पर, डाली किसी ने दृष्टि छिपकर,
इसलिए ऋतुराज ने भी, भर दिये मनसिज-सरोवर ।

(३)

आगया मधुमय पवन, चुप-चाप घाटी से निकल कर,
कर दिया अभिषिक्त नभ ने नेह का अमृत बरस कर,
कामिनी-सी दुग्ध-वर्णी, दामिनी ने दृग उठाये,
कोकिला ने आम्रपाली से अमोलक गीत गाये ;
मेघ ने दृग-बिंदु भीगे, यक्ष के पत्रक दिखाये,
कुछ पढ़े कुछ भांप कर ही, अश्रु श्वेता ने बहाये,
लिख दिया निश्वास ने, कुछ कांपते थर-थर अधर से,
इसलिए ऋतुराज ने भी, उर किया क्षत क्षिप्त शर से ।

(४)

कुंज में किसलय-सुकोमल, कर-कमल परिमल वियारी,
नग्न होती छांह को, पहुंची उठाने स्वर्ण-सारी,
किंतु तब तक आ गया, मधुसिक्त पीला वस्त्र-धारी,
माधवी छवि को निरख, कर सकपकायी वह उघारी;
पूर्व इसके कुछ संभलती, शीघ्र ही करवट बदल कर,
मुग्ध-बाला सो गयी, हाला-प्रणय से प्राण छक कर;
शिथिल कलशों को संभाला, ज्योत्सना ने हाथ रख कर,
इसलिए ऋतुराज ने भी, हाथ धोये पा सुअवसर ।

✆ ५/१३०, महावीर गंज-२, फर्रुख़ाबाद (उ. प्र.)-२०९६२५

कहानी

तो का करें?

✍ आशा अय्यर 'कनुप्रिया'

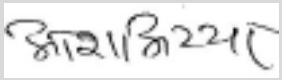

१३ अगस्त १९५२

लेखन : *पहली कहानी १९७८ 'सरिता' में. 'नयी दुनिया,' 'दै. भास्कर,' 'वनिता,' 'चाणक्य विचार,' 'नव-भारत' में ७० से अधिक कहानियां प्रकाशित.*

प्रकाशन : *'मां जैसी' (कहानी संकलन), कहानी कैसे लिखें (१९ लेखों का संकलन), हिंदी शिक्षण कैसे करें एवं ३१ निबंधों का संकलन (निबंधिनी) प्रकाशित. अनेक लेख प्रकाशित.*

अन्य : *राज्य संसाधन केंद्र, इंदौर से नवसाक्षरों के लिए कहानी 'कजरी' में प्रकाशित, एक संकलन प्रसिद्ध संघर्ष शील महिलाओं पर भी तैयार. पढ़ने में विशेष रुचि, हिंदी, अंग्रेज़ी और तमिल के अलावा उर्दू भी पढ़ लेती हूं.*

संप्रति : *हिंदी से अंग्रेज़ी एवं अंग्रेज़ी से हिंदी में अनुवाद का कार्य.*

९२-ए, गोपुर कॉलोनी,
अन्नपूर्णा मार्ग,
इंदौर-४५२००९.
मो. ९४७९७२३८१४

"सुरसती के ये शब्द मेरे कानों में गूंजते ही रहते हैं, आज फिर किसी ने मुझसे पूछ लिया है कि "आप समाज-सेवा क्यों करने लगी हैं?" तो एक बारगी मैं भी सुरसती के शब्दों में प्रति-प्रश्न करना चाहती हूं —"तो का करें?"

जब कोई युवती विवाह के सवा साल बाद ही, चार माह के शिशु को गोदी में थामे यह पाये कि उसका पति पर-स्त्री में लिप्त है तो उसे क्या करना चाहिए? "पुरुष अधिक 'फ़िजिकल' होता है और उसे ऐसी बातों में कोई दोष नहीं दिखाई देता है." — मीता के इस उपदेश को मैंने स्वीकार कर लिया था. कारण तो असल में यह था कि मैं डरपोक हूं. जब सुदीप्त चार माह का होने जा रहा था तो एक दिन विवेक फ़ैक्ट्री जाते-जाते अपना चश्मा भूल गये थे. उन दिनों हमारे घर फ़ोन न था और हमें मकान मालकिन के घर ही जाकर फ़ोन करना पड़ता था. मैं सास को सुदीप्त पर नज़र रखने को कह नीचे शर्माजी के घर गयी. दो बार उनकी बहिन का नाम पुकारने पर भी कोई उत्तर न पा मैंने यूं ही उढ़का दरवाज़ा भीतर की ओर ठेल दिया. और बिना अनुमति द्वार खोलने का दंड तुरंत मिल गया था मुझे — विवेक और शर्माजी की बहिन आलिंगन बद्ध खड़े थे.

उसके बाद तो जैसे हिमालय की ठंडक उतर आयी थी मेरे सीने में और वैसा ही पर्वत-सा बोझ भी! डेढ़ माह तक नन्हें से सुदीप्त को उठाये न जाने कहां-कहां घूमती रही. इस विषय पर बात करना भी मुझे घोर अरुचिकर लगा.

सखी-सहेलियां, मौसी-बुआएं भी कब तक मुझे रखतीं? धीरे-धीरे किसी अनहोनी की भनक लगती और वे सवाल करने शुरू कर देतीं.

विवेक को समझ में तो आ ही गया था कि मैं क्यों गयी हूं पर कहां, पता नहीं लगा सका. शर्म की जगह कुछ ही दिनों में चतुराई और दंभ ने ले लिया और उड़ा दिया कि पोस्ट नैटल अस्थिरता की मारी मैं भटक रही हूं. वाह! भटकन किसकी और अपराधी कौन?

विवेक के प्रति मेरा सारा प्यार-आदर मिट्टी हो चुका था. उसका कोई भी तर्क मेरे गले नहीं उतरा. मीता मेरी अंतरंग सहेली थी, यह विवेक को पता था और अंतत: मीता को ही मुझ तक पहुंचने के लिए चुना विवेक ने! मीता ने मुझे समझाया — "देख, पहली बात तूने या मैंने विवेक को नहीं बुलाया है! दूसरे शारीरिक संबंध के मायने पुरुषों के लिए वह नहीं होते जो, हमारे लिए होते हैं. तुमने तो सुदीप्त के जन्म के पांच माह पहले से ही संन्यास ले लिया था!"

"मगर, मीता, हम भी ऐसा करें तो? और वहीं? मेरी नाक के ठीक नीचे? लिटरली? उफ़! अब भी सोचो तो उबकाई आ जाती है? हिम्मत तो देखो मुझसे प्रेम,

विश्वास जताकर जाना और दो मिनिट बाद ही ..... नहीं! मीता!''

''तो तुम क्या करोगी?''

क्या करूंगी? मैंने बी. ए. किया था. मगर बी. एड्. नहीं! अंग्रेज़ी मेरी कामचलाऊ थी! ट्यूशन भी नहीं कर सकती थी. कोई प्रोफ़ेशनल डिग्री भी नहीं थी. पूरी-की-पूरी पति-आश्रित थी. मन में आता था सुदीप्त उन्हें दे दूं और मुक्ति पाऊं!

''अगर मैं किसी बड़े घर में 'हाउसमेड' या कीपर बन जाऊं तो?''

''ये भारत है बिट्टो! यहां 'बड़े घरों में कैसे बड़े लोग रहते हैं और वे क्या करते हैं - यह सोचने की बात है! फिर अपनी पच्चीस की सलोनी काया का क्या करोगी? बुरके या घूंघटवाली 'हाउस कीपर' बनोगी क्या?'

मीता बड़ा कड़वा बोलती है, वह नहीं चूकी — ''तुम्हारे भाई-भावज, अंकल-आंटी कोई भी नहीं रखेगा तुम्हें! वे सब दक़ियानूस हैं. उन्होंने कर दिया है ना 'कन्यादान' अब दान भी कभी वापस लिया जाता है क्या? तुम तो विवेक को सशर्त माफ़ कर दो.'' कहना पांच साल तक तुम्हें हाथ भी न लगाये!''

मैंने वितृष्णा से भरके कहा — ''अच्छा? जो पांच-सात माह हाथ न रोक सका, वह पांच साल रुकेगा, ना? वैसे भी उसके साथ मैंने .....?'' इसके आगे मैं मीता से भी कुछ न कह सकी — आत्मदया, अपमान, बेबसी— न जाने क्या-कुछ घुमड़ रहा था मेरे भीतर?

मुझे बाहों में भर मीता बोली — ''देख! इधर देख! अकेले जीवन कैसे बितायेगी? अकेली ही रहोगी क्या जीवन भर? ईश्वर पर भरोसा रखो! कोई-न-कोई रास्ता ज़रूर निकलेगा.''

क्या पता? पर मैं तो लौट ही गयी थी. फ़ैक्ट्री के अलावा विवेक सारा समय घर पर ही बिताते. मेरा और सुदीप्त का विश्वास जीतना चाहते लेकिन जो चीज़ बन ही नहीं पायी थी, उसे क्या बचा पाते? विवेक को एक बेटी चाहिए थी मगर मुझे बिना प्यार के या सम्मान के दैहिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए पैदा की गयी संतान नहीं चाहिए थी. मैं उसे प्यार न कर पाती इसलिए मैं अटल रही!

''मुझे पढ़ना है.'' यह कहते ही विवेक ने सारी व्यवस्थाएं कर दीं. समाज-सेवा में उपाधि ले ली मैंने और उसी दौरान अंतिम सत्र में फ़ील्डवर्क के दौरान बैतूल के आस-पास के गांवों में आते-जाते मुझे मिली सरस्वती! वह स्वयं को झांसी का बताती.

''सरस्वती है ना, तुम्हारा नाम?''

''का पता? हमें तो सब सुरसती बुलाती रहीं — हम भी यही बताते हैं, ऐसा ही लिख देते हैं! हम कौन इत्ता पढ़ी हैं?''

ख़ैर, सुरसती ही सही! मेरी हम उम्र थी—बहुत सुंदर तो नहीं पर आकर्षक. चेहरे पर एक तेज़ था. चौथी तक पढ़ी मगर इतनी उम्र दर-दर ठोकरें खाने के बाद भी निश्छल, निष्कपट. उसकी भाषा अनेक बोलियों के शब्दों व बदलते लहजों में रंगी रहती. थोड़ी-थोड़ी देर में ल्सऽऽऽ! ल्सऽऽऽ! करती जाती. हंसती तो लोट-पोट हो जाती. कुछ लोग उसे पगली मानते लेकिन वह हंसी में अपना क्रोध व दुख छुपाती थी — मुझसे बेहतर कौन जानता? पंद्रह दिन में मुझे वापस जाना था इसलिए मैंने उसे अपना पूरा पता दे दिया और उसके तीनों ठौर के पते भी ले लिये. ''इन तीन में से मैं किधर भी रहती हूं. तुम्हें हर दफ़ा तीन चिट्ठी छोड़नी पड़ेंगी.'' वह हंसी!

फिर परीक्षा तक मैं बहुत व्यस्त थी, बस मन के किसी कोने में सुरसती कौंधती रही. जब गर्मियों में विवेक की फ़ैक्ट्री के कुछ अफ़सर परिवारों के साथ कुल्लू मनाली घूमने का कार्यक्रम बना रहे थे तो मैंने साफ़ मना कर दिया. लोगों के सामने पति से प्रेमपूर्ण व्यवहार करना मुझसे संभव न हो पाता. ठीक है कि मैं विवेक के संग रहने आ गयी थी बाक़ी लेनी-देनी, भूलचूक माफ़! हमारे बीच की अजीब-सी रिश्तेदारी ऐसे कार्यक्रमों व आउटिंग के लिए नहीं थी.

मैंने सुरसती को तीनों पतों पर पत्र डाल दिये. उसके आने की सूचना से मैं गदगद हो उठी और यह सिलसिला अभी तक ज़ारी है. कुछ सालों बाद सुरसती का आना इतना अनिवार्य हो गया था कि विवेक उन दिनों के लिए अपना कार्यक्रम बना लेते थे.

दो ही बरस में पंद्रह-पंद्रह दिन के इन दो आगमनों में सुरसती को इतने पास पाने लगी जितना मीता बीस बरस में नहीं हो पायी थी. सुरसती का बाल-विवाह हुआ था — ''मैं इत्ती तगड़ी थी ना? इसलिए ल्सऽऽऽ!'' आराम से पसर के बैठती थी — उसे किसी से कुछ लेना-

देना न था. ''कोई कुछ सोचे और कुछ भी कहे. उन्हें हमसे और हमें उनसे क्या? का है ना? ल्सऽऽऽ!''

मैं उसकी बातों पर ख़ूब हंसती. शायद उसी के सान्निध्य में हंसती भी! सुदीप्त तो मौसी का दीवाना ही था! छह की उम्र से अट्ठारह का होकर भी वह मौसी के गले लगता, उससे पिटता, उसे छेड़ता! हम तीनों का यह छोटा-सा कुनबा मुझे बहुत प्रिय था. सुदीप्त एक प्रकार से उसका 'मानसपुत्र' था.

''बीस की होके भी मैं उन्हें संतान नहीं दे पा रही थी! बांझ हूं ना? तो उन पर बहुत दबाव था, मैंने ही कह दिया कि दूसरा ब्याह कर लो! उनने कर लिया. ल्ससऽऽ! ठीक है ना?''

मैं चीख़ ही पड़ी — ''ठीक? क्या? क्या ठीक है इसमें?'' उस समय तो वह कुछ ना बोली पर जब मैं रात को छत पर पहुंची तो वह अपने पलंग पर बैठी सुबक रही थी — मैंने उसके कंधे पर हथेली का दबाव दिया तो वह फफक उठी — ''तो का करती हां? का करती? चौथी तक पढ़ी थी. का आता था हमें? सोलह में गौना होकर आ गयी थी. पांच साल बाद भी गोद सूनी थी. सास-जेठानी तो दो बरस बाद से ही ताने मारने लगीं. मेरी अम्मा ने भी जाने कौन-कौन से व्रत-तीरथ कराये, मन्नतें मंगवायीं, मगर, कुछ हुआ?''

''तो इसमें तुम्हारी ही ग़लती थी क्या?''

''ना! हमारी नाय! पर हमारे भाग की तो थी. इत्ती मोटी-तगड़ी, थाली भर खाती, लोटा-लोटा भर दूध पीती. पर का पता, भगवान ने ममता तो गोदी भर दी कि चाच्चार पाल लेती... मगर...'' मुझे लगा था कि वह फिर रोने लग जायेगी, पर नहीं.... उसकी पीड़ा इतना घनी थी कि बार-बार पिघलती नहीं!

''सब कहते दूसरी शादी कर लो और ये मुझे ताकते? क्यों सुधा, मुझे क्यों ताकते? मना करना चाहते तो क्या मना न कर सकते थे? मतलब मुझे तय करना था.''

मैंने शुरू से ही सुरसती से मुझे नाम से पुकारने को कहा — ''तुममें मुझमें कोई फ़र्क नहीं है. और मुझे बहिन जी, भाभी जी कहलाना पसंद नहीं!''

''वो तो निरे डरपोक हैं सुधा!''

''क्या कहती हो?''

''हां! मुझे घर से हंकाल नहीं सके! ना मुझे ऊंची आवाज़ में कुछ कहते! तीन बच्चे हुए उनके सुधा पर मैंने एक को भी हाथ न लगाया. कभी कहा भी नहीं कि लो पकड़ो, इनकी धाय मां ही बन जाऊं?''

''तो फिर?''

''मैं ही, निकल आयी एक दिन!''

''कैसे?''

''हमारे पड़ोस में सरिता नाम की औरत की चार बेटियां थीं उसकी! दूसरी नंबरवाली को छह साल की उमर में... वो क्या कहते हैं — मे...से कुछ तो भी... दिमाग़ी बुखार! वो ठीक तो हुई मगर कभी-कभी ऐसे ही उठ के कहीं भी चल देती.

''मैनेंजाइटिस!'' मैंने सोचा! .... मगर इसका तो इलाज होता है.''

''होता होगा ही और शहर में एक स्कूल भी था सुधा जहां ऐसे बच्चों को पढ़ाते-लिखाते थे, पर सरिता को फ़ुर्सत कहां? चार बेटियों के पीछे एक बेटा हुआ तो उसके लिए तो एक बेटी, कम हो भी जाती थी तो क्या होता?''

''कैसी बातें करती हो सुरसती?'' मैं चौंकी.

''मैं नहीं, ये सरिता ने कही! हर ग़लत बात पे उस बेचारी को पीटती! एक दिन इत्ता पीटा कि बेचारी के मुंह से झाग निकलने लगा! मैं न देख सकी, लपक के उठा लायी. उसे चार दिन अपने पास रखा. सुधा, उन निर्दयीयों ने उसे जलाया भी था जगह-जगह!''

''फिर?''

''मैंने सरिता को धमकाया कि अगर उसने मुझे कुमुद को ख़ास स्कूल में नहीं ले जाने दिया तो मैं थाने में रपट लिखवा दूंगी. वह मेरी पहली लड़ाई थी. मैं अपने लिए नहीं लड़ सकी. पर उसके लिए तो लड़ने की ठान ली मैंने.''

''तुम्हारे पति... उसकी दूसरी....''

''कहा ना, निरा डरपोक था. मैं दो बरस तक कुमुद की देखभाल करती रही, फिर वो जो स्कूल था — 'मनसा' वहीं की मैडम लोगों की राय से मैंने कुमुद को गोद ले लिया!

''मेरे जीवन में तो क्या रखा था? दो बरस में कुमुद ठीक हो गयी. कोख तो नहीं, मेरी गोद भर गयी! और जब कुमुद ब्याह के चली जायेगी तो भी मेरी गोद भरी रहेगी.''

इस घटना को सुन मैं तो भीतर तक हिल गयी!

सुरसती का साहस कि दुस्साहस? जो भी हो, मुझे अपनी कमज़ोरियों का तीव्र एहसास करा गया? मैं तो 'समाजसेवा' की उपाधि भी लेकर बैठी थी लेकिन सुरसती ने जीवन के कॉलेज से ही सब पढ़ डाला था! मुझे भी कुछ करना चाहिए— केवल अपनी ही पीड़ा को कुरेदते हुए संसार की सबसे बड़ी दुखियारी मान कर मैं इतने बरस काट चुकी थी, मगर अब नहीं!

सुदीप्त आठवीं में आया तब तक मैं ''छाया'' और ''निकुंज'' में अपने लिए काफ़ी जगह ढूंढ़ चुकी थी. शारीरिक व मानसिक रूप से विकलांग बच्चों के डे स्कूल थे ये दोनों और मैं सामाजिक कार्यकर्त्ता के रूप में उन बच्चों व इनके परिवारों के बीच तालमेल बिठाती.

लेकिन मेरा सपना इससे भी बड़ा था — सुरसती और मेरी जैसी स्त्रियों के लिए मार्गदर्शन व सहानुभूति का एक केंद्र स्थापित करना! परित्यक्ता, विधवा, पीड़ित, शारीरिक व मानसिक अत्याचार का शिकार और इसके लिए मैंने 'निकुंज' की संचालिका से लंबी लड़ाई की! हंसा बकुल! जब चार-पांच बरस तक कोई परिणाम नहीं निकला तो मैंने ठाना कि घी सीधी उंगली से नहीं निकले तो उंगली टेढ़ी की जाये. सुरसती ने ही 'आइडिया' दिया था—''उसकी घरेलू ज़िंदगी के बारे में पता लगाओ.''

मैंने छह माह में सब जाना और फिर एक दिन हंसा बकुल से एक निजी व गोपनीय बैठक की. कुछ कड़वी बातें करनी पड़ीं पर दूसरा कोई रास्ता न था!

उनका तर्क था कि ''सुधा जी ऐसा करने लगे तो इस शहर की आधी से अधिक औरतें....''

''तो क्या हुआ? हर औरत एक व्यक्ति है. जीती-जागती, सपने देखती! उसकी पीड़ा एक मां की, एक बेटी की या पत्नी की ही नहीं. एक व्यक्ति की है.'' मैंने उनकी आंखों में आंखें डालकर कहा — ''जिस औरत को सारी दुनिया सुखी-संपन्न हिमालय की चोटी पर बैठी हुई समझती है, यदि उसका पति परस्त्रीगामी है तो उसे मंत्रणा और मदद की ज़रूरत है हंसा जी! कोई जगह तो हो जहां वह आ सके?''

''म.... मतलब? क्या कहना चाहती हैं आप?''

''यही कि यहीं 'निकुंज' में मुझे एक कमरा दे दीजिए जहां हम ऐसी पत्नियों का दर्द सुन सकें. उन्हें पागलपन, अपमान या अकेलापन न भोगना पड़े, जहां आकर वे....''

''ठीक है! ठीक है!''

और कुछ ही दिनों में मैंने 'सांत्वना' नाम का केंद्र खोल लिया. देखते ही देखते वर्षों से मेरे भीतर पल रही कटुता व पीड़ा विगलित हो गयी. ऊधमाई और क्रूरता के ऐसे-ऐसे प्रकरण सुनने को मिले कि मेरा अपना दुख तो राई जितना भी नहीं लगा मुझे!

पदोन्नति के लिए पत्नी या बेटी को किसी लालची अफ़सर को सौंप देनेवाला, नशे में बेटी के ही साथ सहवास करने का प्रयत्न करना 'पिता' नाम को कलंकित करने वाला, लाखों के लालच में लंपट को श्रेष्ठ वर कह के बहन से ब्याह की अनुमति देनेवाला भाई; दो-तीन देवरों के बीच उचकायी जाती कोई द्रौपदी... रोंगटे खड़े हो जाते हैं मेरे! सहस्रों हाथवाली चंडी की इस देश को आज भी ज़रूरत है मगर चौक में मंच पर खड़ाकर पूजने के लिए नहीं अपितु एक-एक करवाल ले ऐसे नर-दानवों के मुंड उतारने के लिए!

अब मैं समाज-सेवा में लगी हूं तो हर जान-पहचानवाला... हर रिश्तेदार मुझसे पूछे कि मैं सर्व-सुविधा संपन्न घर की होकर क्यों यूं मारी-मारी फिरती हूं तो क्या मैं और सुरसती यह नहीं पूछ सकतीं कि —

''तो का करें?''

❖❖❖

कहानी

घर के लिए

✍ डॉ. देवेंद्र सिंह

मां समझती है श्यामली सो रही है. मगर वह मच्छरदानी के अंदर से सब देख रही है. रात में ही तो आयी है, श्यामली पापा को देखने. पापा ने बिस्तर पकड़ लिया है. वह महानगर में रहती है. यहां से हज़ार मील दूर, वहां वह भी नौकरी करती है.

मां हमेशा की तरह मुंह अंधेरे ही उठ गयी है. पूजा वाले कोने में नमन करके उसने झाड़ू उठा ली है, पूरे घर-आंगन में झाड़ू लगाकर बाथरूम जायेगी, फिर किचन में जाकर सिंक में भरे बरतन मांजेगी. यही उसका नित्य का नियम रहा है. पापा के बिस्तर पर पड़ जाने के बाद से इस नियम में थोड़ा बदलाव आया है. अब वह बाथरूम से निकलकर पहले पापा की सेवा में लगती है. मां की सुबह वाली ड्यूटी में यह एक नया काम जुड़ गया है.

वह पापा को बिस्तर पर ही ब्रश कराती है. पानी पिलाती है. उनके लिए बेड-टी बनाकर लाती है. पापा चाय पीने लगते हैं. मां लपककर किचन में घुसती है और जल्दी-जल्दी बरतन मांजने लगती है.

पापा की चाय ख़त्म हो गयी है. अब उनको तलब महसूस हो रही है. वे किचन की दिशा में देखते हैं जो उनकी आंखों से ओझल है. उधर से बरतनों के घिसने की आवाज़ भर आती है.

''अरे कहां चली गयी?'' पापा की तेज़, चिड़चिड़ायी-सी आवाज़ पूरे घर में गूंज जाती है.

''बस हो गया, अभी आयी!'' मां वहीं से कहती है, उसके स्वर में मनुहार, प्यार, भय, हड़बड़ाहट घुले-मिले हैं.

पापा कुछ-कुछ बड़बड़ाते हैं जो श्यामली सुनती तो है, पर समझ नहीं पाती.

मां भागी-भागी आती है, पापा को बाहों में भरकर उठाती है. पापा बिना सहारे के चल-फिर नहीं सकते हैं. उनका कमर से नीचे भाग अधसुन्न हो गया है. लाठी के सहारे चलते हुए कई बार गिर पड़े हैं. इसलिए मां ही अब उनकी लाठी बन गयी है.

''एक साथ पचीस काम करने लगती है!'' पापा मां की बांहों में सिमटे, तिलमलाकर चलते हुए उसको डांट रहे हैं, यह नहीं कि एक काम कर ले तब दूसरा शुरू करे. न यह हो पाता है, न वह...''

मां अपराधिनी-सी चुप है.

श्यामली एकबारगी धधक उठती है. पापा का यही सामंती रवैया उसको धुर बचपन से नागवार लगता आया है. अपने से एक डग चल नहीं पाते हैं और ताव देखो. अभी अगर मां की जगह वह होती तो छोड़ देती. जाइए, गिरिए-बजरिए चाहे जैसे पहुंचिए

११ मार्च १९४०;
एम. ए. (हिंदी), पी-एच. डी.

प्रकाशन : *'तिरहुतिया,' 'भोज,' 'लोककथा की द्रौपदी,' 'काठ की टांगें' (कहानी-संग्रह), 'आमुख कथा' (उपन्यास), 'अत्ता-पत्ता' (उपन्यास/शिल्पायन से प्रकाशनाधीन), 'छाया युद्ध' (पूर्णकालिक नाटक).*

संपादन : *'कविता भागलपुर' के चार साझा संकलन, हिंदी तथा अंगिका की पत्रिकाएं.*

सम्मान : *बनारसी प्रसाद भोजपुरी सम्मान.*

संप्रति : *स्वतंत्र लेखन.*

'देवगिरि',
आदमपुर घाट मोड़,
भागलपुर- ८१२००१
फ़ो-८०८४४३२७०१,
८१३०१०६६९६.

कमोड तक.

उसने मां को पापा की पत्नी-अर्धांगिनी के रूप में नहीं, एक दासी-नौकरानी के रूप में ही सब दिन देखा, जाना है. जबकि मां आर्थिक रूप से पापा की आश्रिता भी नहीं है. वह स्वयं एक शिक्षिका है.

ग़ुस्सा उसको मां पर भी आता है. उसके चुपचाप सहते जाने के कारण पापा का मन और बढ़ता गया है. वह क्यों सहती है इतना सब कुछ?... शायद दासता की भी लत पड़ जाती है. सदियों से चली आती दासता ख़ून में उतर गयी है.

□

श्यामली की मुंदी पलकों के परदे पर अतीत के कई दृश्य झिलमिला उठते हैं.

सुबह का समय है.

''ए जीऽ.'' पापा मच्छरदानी के अंदर से मां को आवाज़ देते हैं.

मां किचन से निकलकर आती है.

''खुल गयी नींद?'' मां पूछती है.

''हां खुल तो गयी.''

''तो उठिए, ब्रश कीजिए, हम चाय बनाते हैं.''

''उठें कैसे? उठा ही नहीं जाता है. तुम उठा दो न.''

मां समझ जाती है. वह मच्छरदानी के अंदर आधी देह घुसाकर पापा की पीठ, कमर से लेकर पैर तक दबाती है. देर तक दबाती रहती है. उसका ध्यान किचन के कामों तथा दिवाल पर टिक-टिक करती घड़ी पर लगा रहता है.

''अब उठ जाइए. हम चाय बनाने जा रहे हैं.'' मां कहती है.

''बस थोड़ा-सा और बहुत अच्छा लग रहा है.''

पापा को इस सब से कुछ लेना-देना नहीं रहता कि मां किचन के सारे काम कब, कैसे निपटायेगी. सबको खिलायेगी. कपड़े धोयेगी. बच्चों को स्कूल भेजेगी. फिर ख़ुद तैयार होकर स्कूल जायेगी. वह सब दिन भागम-भाग में आधा-अधूरा निगलकर ही स्कूल जाती. इससे उसकी सेहत हमेशा ख़राब रहती.

□

पापा खाना सब दिन बिछावन पर ही खाते. खाकर थाली में ही हाथ-मुंह धोते. मां जूठे बरतन उठाकर किचन में चली जाती. पापा मां के लौटने का इंतज़ार करते बैठे रहते. वे पान खाते थे. पान की डलिया उनके पास ही पड़ी रहती. मगर मजाल है कि अपने से लगाकर खा लेंगे! नहीं, मां ही आकर लगाती.

''ए जी ऽ!क्या करने लगी?'' पापा हांक लगाते.

''आ रहे हैं.''

''ओह!'' पापा कुढ़ने लगते.

मां भागी आती और पान लगाकर देती.

हां, जब मां से ग़ुस्सा होते तब पान ख़ुद लगाते. उस समय उनका मुंह देखने लायक होता. मां बार-बार वहां मंडराती. पापा मुंह फुलाये पान लगाते रहते.

□

पापा ने एक रूमाल तक कभी अपने से नहीं धोया है. मां ही रोज़ बाल्टी भर कपड़े धोती है. उसके नाखून सड़ गये हैं. श्यामली जब थोड़ी सयानी हुई तब पापा से इस बात के लिए ख़ूब लड़ती.

''पापा! आप अपना अंडरवियर, बनियान और रूमाल भर रोज़ नहाते के समय क्यों नहीं धो लेते हैं?''

''हमसे नहीं होता है बेटी.''

''होगा काहे नहीं. उसमें क्या लगता है. ज़रा-सा सर्फ़ या साबुन ही देकर फलार दीजिए, बस हो गया.''

''नहीं होता है न हमसे.''

''कीजियेगा, तब न होगा पापा! आप करना ही नहीं चाहते हैं. आपको तो एक नौरी मिल गयी है...''

''पापा से लड़ रही है.'' तभी मां पापा के बचाव में हंसती हुई हाज़िर हो जाती, ''सबसे सब काम नहीं होता है बेटा!''

''नहीं होता है तो मरो!'' श्यामली तिलमिलाकर कहती, ''हाथ तो सड़े न...''

□

बाज़ार के प्राय: काम मां ही करती. स्कूल से छूटकर वह सीधा घर नहीं लौटती. बाज़ार होकर आती. स्कूल जाते समय मां अपने बैग में दो थैले ठूंस लेती. उधर से दोनों में सामान भरकर लदे-फदे आती. तब तक श्यामली, मोहिनी तथा राजुल स्कूल से आकर मां की प्रतीक्षा में बैठे रहते. मां थैले पटकती और पसीना भी न पोंछ पाती कि, बच्चों में लग जाती.

पापा भी कई बार मां से पहले आ जाते. पापा की आदत थी कि घर पहुंचते ही सबसे पहले उनको चाय

चाहिए. मां के नहीं रहने से पापा बौखलाते. भुनभुनाते. और मां जैसे ही आती, उस पर टूट पड़ते.

''अब आयी है टूर करके...''

पापा घर में होते तो मां बच्चों को खाना बाद में देती. आते ही पहले चाय चढ़ा देती. चाय बनती देख पापा अंदर से नरम और सदय हो जाते, मगर मुद्रा वही रहती. वे कमरे से निकलकर किचन में मां के क़रीब आ जाते.

''बाज़ार जाती हो तो घर आने का मन नहीं करता है?'' पापा पूछते.

मां पापा के स्वर में छिपे रंग को भांप लेती और पीठ फेरे-फेरे कहती, ''नहीं, काहे के लिए आयेंगे घर!''

''लगता है जैसे वहां कोई पकड़ के बांध देता है.'

''दुकानदरबा बांध देता है, छोड़ता ही नहीं है!''

''यही सब करने के लिए जाती हो बाज़ार?''

''क्या करें, यहां कोई पूछता ही नहीं है.''

''भले न निकलेगा पेपर में—तीन बच्चों की मां प्रेमी के संग फरार!''

□

मां किचन से निकलकर आयी है. श्यामली आंखें खोल देती है.

''जग गयी बेटी! अब चाय बनाते हैं?''

''तुमने पी ली?''

''अभी कहां. एक कप ख़ाली पापा के लिए बना दी थी. अब दोनों मां-बेटी साथ-साथ पियेंगे.''

''ठीक है चढ़ाओ, मैं वहीं आती हूं.''

श्यामली फ्रेश होकर आती है. एक मचिया लेकर बैठ जाती है. मां चूल्हे के पास है. वह चाय छानकर एक प्याला श्यामली के आगे धर देती है.

''पापा का रवैया एकदम नहीं बदला है.'' श्यामली

लघुकथा

एक

✍ कमल चोपड़ा

जत्थे और उसके बीच का फासला कम होता जा रहा था. उसका दिल धड़क रहा था. हाथ-पांव कांप रहे थे. हथियारों को हवा में लहराते हुए धर्म के जयकारे लगाता हुआ दंगाई जत्था उसकी ओर बढ़ रहा था. किसी भी क्षण वह मुंहबाये उसकी ओर बढ़ रही मौत के जबड़े में होगा. बचने के लिए वह भागना चाहता था पर....? पांव एकदम जड़ हो गये थे. उसकी रूह कांप रही थी— अल्लाह अल्ला अल्ला रहम... मेरे मौला मुझे बचा...!

जत्थे के आगे-आगे चल रहे व्यक्ति की नज़र उस पर पड़ी तो जयकारे लगाना छोड़ उसने प्रश्नभरी नज़रों से उसकी ओर देखा. क्षणभर को उसकी सांस सूख गयी. अगले ही क्षण जाने कैसे उसने अपनी मुट्ठी हवा में उछाल कर जयकारा लगाया— जय श्रीराम.... भीड़ ने जवाब दिया—जय श्रीराम. उसने फिर जयकारा लगाया—जय श्रीराम. भीड़ ने फिर जयकारे जवाब जयकारे में दिया. कुछ ही देर बाद वह जत्थे के आगे-आगे जयकारे लगाता हुआ चल रहा था. नारे लगाते-लगाते उसका गला सूखने लगा था. तभी भीड़ में से किसी ने नारे की लय बदली - जय श्रीराम... जय श्री राम... वह धीरे-धीरे भीड़ के पीछे की ओर होने लगा.

जत्था आगे बढ़ गया. उसकी जान में जान आयी. यह हुआ कैसे? बच कैसे गया मैं? भगवान ने मुझे बचा लिया. मैंने अल्लाह को याद किया था. मेरे मुंह से अचानक जयकारा निकला. राम के नाम ने मुझे बचा लिया. दोनों ने मिलकर? या दोनों हैं ही एक?

✆ १६००/११४ त्रिनगर, दिल्ली- ११००३५

चाय सिप करते हुए धीमे स्वर में कहती है.

''अब क्या बदलेगा. सूखा बांस कहीं नबता है?''

''तुमने सब दिन सह-सहकर उनका मन और बढ़ा दिया है.''

मां पलकें उठाकर एक बार बेटी को देखती भर है, बोलती कुछ नहीं.

''ख़ुद से उठकर खड़े नहीं हो पाते हैं, पर रुआब वही है.'' श्यामली का आक्रोश फट पड़ता है, ''तुम छोड़ क्यों नहीं देती हो? दिन-रात सब नौरपना भी करो और धौंस भी सहो.''

''छोड़ कैसे दें बेटी! इतने सालों तक साथ-साथ निबाह किया और आज जब विपदा में पड़े हैं तो छोड़ दें... बीमारी से ऐसे हो गये हैं. हरदम खिन-खिन करते रहते हैं.''

''बीमारी से हो गये हैं. पहले तो जैसे बड़े सोहने थे. मैं तो उनको बचपन से ऐसा ही देख रही हूं. तुम जितना सहती गयी, उतना ही वे और चढ़ते गये.''

''सहती रही घर के लिए. बच्चों के लिए. औरत को यह सब सहन करना ही पड़ता है बेटी, नहीं तो घर उजड़ जायेगा. बच्चे बिलट जायेंगे.''

''क्यों, औरत ने घर और बच्चों का ठेका ले लिया है क्या? घर उजड़ेगा तो दोनों का. बच्चे बिलटेंगे दोनों के.''

''औरत मां होती है न बेटी! वह अपनी कोख़ में बच्चे को सेती है. बच्चा जनने में कितनी पीड़ा होती है. दूसरा जनम होता है.... बच्चों को पालने के लिए ही औरत घर बनाती है. घर और बच्चों को बचाने की ख़ातिर औरत को बहुत कुछ सहना और त्याग करना पड़ता है.''

''इसीलिए तो बच्चे जनने से भागने लगी है औरत.''

''नहीं बेटी, औरत बिना बच्चे के नहीं रह सकती है. अपवादों की बात छोड़ दो.''

''नहीं रह सकेगी तो गोद ले लेगी बच्चा.''

''उस बच्चे को भी तो कोई औरत ही न जनेगी?''

''अब परखनली में भी बच्चे बनने लगे हैं.''

''परखनली वाले बच्चे से कोख-जाये जैसा प्यार हो पायेगा?... पता नहीं वह संसार कैसा होगा.''

जैसा भी हो, मर्दों का स्वामित्व तो टूटेगा.

''ये मर्द कौन हैं बेटी?'' मां तड़पकर पूछती है, ''ये पिता हैं, पति हैं, पुत्र-भाई-दामाद हैं; काका-बाबा हैं, नाना-मामू हैं; और भी बहुत कुछ हैं. ये सब क्या दुश्मन हैं कि इनके विरुद्ध मोर्चाबंदी करनी है?''

''पति ही तो हैं पापा तुम्हारे, पर दासी बनाकर रखा जीवन भर तुमको और अपने स्वामी बने रहे.''

''न मानो स्वामी, मगर सुहाग तो पति से ही है.''

''चुटकी भर सिंदूर की ग़ुलामी ढोयें, यही न!''

''सुन बेटी, एक बढ़नी से सब मर्दों को बुहार कर घूरे पर डाल देना हल नहीं है, यह ज़िंदगी है. हसेड़ी नहीं कि एक कतार में हरबे-हथियार के साथ मर्द खड़े हैं और उनके सामने की कतार में औरतें.''

श्यामली चौंककर मां को देखती है.

''अच्छा बताओ तो,'' कुछ पल चुप रहने के बाद मां विह्वल भाव से पूछती है, ''पापा से तुम लोगों को कभी प्यार-दुलार नहीं मिला है? वे क्या सच में वैसे ही क्रूर हैं जैसा तुम्हारी बोली से लगता है? हमको तो याद भी नहीं पड़ता है कि उन्होंने तुम लोगों को कभी एक चांटा भी मारा है. हमारे साथ भी कभी मार-गारी नहीं की है...तुम उनका खाली खोल ही क्यों देखती हो? उस कठोर खोल के भीतर नरम-मीठी गरी भी तो है....''

तभी श्यामली का मोबाइल बजने लगता है और मां का तार टूट जाता है.

श्यामली उठकर कमरे की ओर लपकती है. देर तक बतियाती रहती है.

''प्रवीण और मनु थे!'' श्यामली वापस किचन में आकर मां को बताती है. उसका स्वर प्रेमावेग से सिक्त है, ''पापा-बेटा दोनों अपसेट थे... एक दिन के लिए भी घर छोड़कर कहीं जाओ तो यही हाल होता है. मनु तो बार-बार कह रहा था, ''तुमको बहुत मिस कर रहा हूं ममा! तुम कब आ रही हो? जल्दी आ जाओ....!''

मां श्यामली का मुंह देख रही है. वह ममता और प्रेम से डबडब है. मां का हृदय जुड़ा जाता है. मगर तभी उसके अंतर में एक चुहल अंकुरने लगती है. वह मुस्कुराती है. जी में आता है पूछे, प्रवीण और मनु भी तो मर्द ही हैं बेटी?''

श्यामली कहीं खोयी हुई-सी, हाथ बढ़ाकर ज़मीन पर पड़ा प्याला उठाती है और मुंह से लगा लेती है.

❖❖❖

कहानी

और सतीश जीत गया...

✍ संजीव निगम

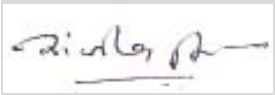

कथाबिंब के हितैषी एवं नियमित लेखक

डी-२०४, संकल्प-२,
पिंपरीपाड़ा, फ़िल्म सिटी रोड,
मालाड (पू.),
मुंबई-४०००९१
फ़ो : ९८२१२८५१३४

सतीश की उम्र पंद्रह साल की रही होगी जब मैंने उसे पहली बार देखा था. दुबला पतला शरीर, थोड़ा सा काला रंग, पर ग़ज़ब का फुर्तीला. एक आवाज़ में दौड़ा चला आता था. वो हमारे ऑफ़िस की कैंटीन में काम करता था. उसका काम था साहब लोगों के लिए चाय नाश्ता वग़ैरह लेकर जाना. सुबह-सुबह नौ बजे से उसका काम जो शुरू होता था तो शाम के सात बजे तक लगभग बिना रुके चलता रहता था. बीच में बस शायद १०-१५ मिनट मिलते थे उसे खाना खाने के लिए पर वह समय भी कब मिलेगा यह निश्चित नहीं था कम से कम ऑफ़िस के लोगों के खाना खाने से पहले तो उसे खाने का वक़्त कभी नहीं मिल सकता था, चाहे कितनी भी भूख लगी हो. खाना भी उसे वहीं कैंटीन से मिलता था.....सादे से चावल और पलती सी दाल. उसके साथ कुछ और लड़के भी थे उसी की उम्र के... सब वहीं कैंटीन में काम करते थे. कोई सतीश की तरह से ही बैरे का काम करता था तो कोई कैंटीन में खाने का सामान, चाय वग़ैरह बनाने में मदद करता था. सब एक सी उम्र के...एक से मेहनती...लगातार काम में लगे हुए.

सारे लड़के वही कैंटीन के एक छोटे से हिस्से में ही रहा करते थे. तारीफ़ की बात यह थी कि सारी तकलीफ़ों के बावजूद भी उनमें निराशा नहीं दिखती थी. एक बार हम तीन चार लोगों को ऑफ़िस में काम करते हुए काफ़ी देर हो गयी थी. चूंकि काम के वक़्त के बाद सिर्फ़ दो लिफ़्टें ही चला करती थीं इसलिए लिफ़्ट मिलने में काफ़ी देर लगा करती थी. ऐसे में हम लोग मन मार पैदल ही सीढ़ियां उतरा करते थे. तो उस दिन भी हम सीढ़ियां उतर रहे थे के सातवी मंज़िल पर पहुंचने पर ख़ूब ज़ोर से शोर मचने की आवाज़ सुनाई देने लगी. हमने ध्यान दिया तो ये आवाज़ें हमे कैंटीन से आती लगीं... हम लपक कर उस तरफ गये तो क्या देखते हैं. सतीश की आंखों पर एक कपडा बंधा है और सब लड़के उसे घेरे हुए शोर मचा रहे हैं. साथ-साथ जिसको मौक़ा मिलता वह उसके सर पर एक चपत लगा देता था. सतीश हाथ फैलाये हुए इधर-उधर घूम रहा था. हम फ़ौरन उनके पास गये. मैं कड़क कर बोला, ''यह क्या हो रहा है, तुम लोग इस तरह से घेर कर सतीश को क्यों मार रहे हो?'' मेरी इस फटकार से सारे लड़के सहम कर चुप हो गये थे. और कुछ डर कर एक कोने में खिसक गये थे. तभी सतीश ने अपनी आंखों से कपड़ा उतारा और कुछ ग़ुस्से भरे स्वर में बोला, ''क्या साब आपने आकर हमारा खेल ख़राब कर दिया?'' मैं चक्कर खा गया. अरे एक तो मैंने इसे पिटने से बचाया, ऊपर से ये मुझसे कह रहा है खेल ख़राब कर दिया. मैंने यही बात उससे कही तो वो ख़ूब ज़ोर से हंस पड़ा, उसके साथ-साथ उसके सभी साथी भी अपना डर भूल कर हंसने लगे. अब मेरी बारी अजीब सा

दिखने की हो गयी. मैंने पूछा, ''तुम लोग इतना ज़ोर से हंस क्यों रहे हो?'' सतीश बोला, ''साब हम लड़ थोड़े ही रहे थे, हम लोग तो चार्-सिपाही का खेल खेल रहे थे. रोज़ कैंटीन का काम ख़त्म होने के बाद हम यही खेलते हैं. यही हमारा मनोरंजन है. उसके बाद रात का खाना बना कर खाकर सो जाते हैं, सुबह पांच बजे उठना जो होता है....आप भी न साहब बेकार में परेशान गये. यह सुन कर मेरे साथी भी हंसने लगे.

मैंने अपनी झेंप मिटाते हुए कहा, ''खेलो, खेलो. तुम लोग खेलो.....हम चलते हैं.'' और हम लोग वहां से निकल लिये.

हमारा ऑफ़िस मुंबई के अत्यंत महंगे इलाके क़फ परेड में था. वह एक मंज़िला इमारत की चार मंज़िलों में फैला था. हालांकि वहां २१ लिफ़्ट लगीं थीं. पर समस्या ये थी कि कैंटीन के लड़कों को उनमें जाने का मौक़ा कम ही मिल पाता था. लिफ़्ट को ऊपर नीचे आने जाने में इतना वक़्त लगता था कि अगर वह लिफ़्ट का इंतज़ार करते ख़ड़े रहते तो उनके हाथ में पकड़ी चाय, नाश्ता ठंडा हो जाता और फिर तो वह चाय नाश्ता जिसके पास भी जाता था वो इन लोगों को जम कर डांट लगाता था. इसलिए मजबूरन कैंटीन के इन लड़कों को सीढ़ियों से ही ऊपर-नीचे आना जाना पड़ता था. अब कैंटीन थी सातवीं मंज़िल पर और जहां मैं बैठता था वो जगह थी नवीं मंज़िल पर. मेरी मंज़िल पर सतीश की ड्यूटी रहा करती थी.

उस मंज़िल पर कम से कम पचास लोग तो काम करते ही थे. सबको चाय नाश्ता पहुंचाने की ज़िम्मेदारी सतीश की ही थी. मुझे नहीं पता के वह दिन में कितनी बार सातवीं मंज़िल से नवीं मजिल के चक्कर लगाता था. पर उसे जब देखो तब वह नवीं मंज़िल पर ही किसी को चाय देता, किसी को नाश्ता देता नज़र आता था. कितनी फुर्ती से वो नीचे जाता होगा, कितनी फुर्ती से सामान लेकर ऊपर आता होगा, इसका तो अंदाज़ा लगाना भी मेरे लिए मुश्किल था. क्योंकि मुझे अगर कभी कैंटीन में जाना पड़ता था तो मैं नवीं मंज़िल से उतर कर सातवीं पर चला तो जाता था पर वापसी में अगर सीढ़ियों से आना पड़ता था तो मेरी तो जैसे शामत आ जाती थी.

एक दिन मैंने उससे पूछ ही लिया था, ''सतीश, तू दिन में कितनी बार ऊपर नीचे आता-जाता रहता है.'' उसने कहा, ''कभी गिना नहीं, पर कम से कम पचास–साठ बार तो हो जाता होगा.'' पचास-साठ बार, ''हे भगवान.'' मेरे मुंह से अपने आप निकल गया. उस वक़्त मुझे अपना एक बार का चढ़ना-उतरना याद आ गया. और सच कहूं तो वो याद करके बैठे-बैठे ही मेरी सांस फूल गयी थी. पर वह, वह तो यूं मुस्करा रहा था जैसे यह कोई बात ही न हो.

उसके जाने के बाद मैंने अपने एक साथी से कहा, ''सुना तुमने यह लड़का दिन में पचास–साठ बार ऊपर नीचे आता जाता है. है न कितने ताज्जुब की बात?'' मेरे साथी ने इस पर बड़ी बेरुख़ी से कहा, ''तो कौन सा बड़ा काम करता है, वह कैंटीन का वेटर है, उसे तो यह सब करना ही है अगर इस तरह से भागा–दौड़ी नहीं करनी थी तो पढ़ लिख कर इंसान बनने की कोशिश करनी चाहिए थी.'' यह बात मुझे बुरी लगी. मैंने अपने साथी से कहा, ''क्यों क्या जो पढ़े लिखे नहीं होते हैं, वो इंसान नहीं होते हैं. उनके शरीर में जान नहीं होती है. उनको क्या थकान नहीं होती है.'' मेरे साथी ने इन बातों का कोई जवाब नहीं दिया.

पर अपने साथी की बात मेरे मन में चुभ गयी थी. मैंने एक दिन सतीश से पूछ ही लिया, ''सतीश तेरी उम्र तो पंद्रह साल के क़रीब है, यह उम्र तो बच्चों के पढ़ने लिखने की होती है, तू क्यों नहीं पढाई-लिखाई करता है.''

मेरी बात सुनते ही सतीश की आंखें गीली हो गयीं. वो कुछ नहीं बोला बस वहां से चुपचाप चला गया. पर उसकी आंखों का गीलापन मुझसे छिपा नहीं रहा था. मेरा दिल अब उसके दिल का दर्द जानने के लिए बेचैन हो उठा था.

एक दिन मैं जान बूझ कर ऑफ़िस के समय के बाद भी काम करता हुआ बैठा रहा. जब सब चले गये तब मैंने कैंटीन में इंटरकॉम पर चाय के लिए कहा. कैन्टीन के मैनेजर ने कह दिया कि ''साहब अभी कैंटीन बंद हो गयी है, इसलिए चाय नहीं मिल सकती है.'' पर तभी मुझे दूर से आती सतीश की आवाज़ सुनाई पड़ी, ''चाय चाहिए साहब मैं लाता हूं.'' मैंने देखा कि सतीश वहीं हमारी मंज़िल पर ही था. मैंने आश्चर्य से उसे देखा. वह मेरे पास आया और बोला, ''मैं यहां चाय के जूठे प्याले उठाने आया था... आपकी बात सुनी तो मैं समझ गया कि

कैंटीन मैनेजर ने मना कर दिया होगा...बड़ा ही कामचोर है... उसका बस चले तो सुबह दस बजे ही कैंटीन के बाहर सब माल खल्लास का बोर्ड टांग दे. वह ख़ुद तो मालिक है नहीं जो उसे कैंटीन की ज़्यादा चिंता हो... आप फ़िकर न करें मैं लाता हूं चाय आपके लिए. मैंने कहा, ''तू कैसे लायेगा जब कैंटीन बंद हो गयी है.'' वह बोला, ''हमारी कैंटीन बंद हो गयी तो क्या पांचवी मंजिल पर एक दूसरे दफ़्तर की कैंटीन खुली होती है. वहां के लड़के मेरे दोस्त हैं, मैं वहां से लाता हूं आपके लिए गरमागरम चाय.''

मैंने मना करना चाहा, ''नहीं, नहीं सतीश रहने दो.'' क्योंकि मेरा असली मक़सद तो सतीश से बात करना ही था, और मैं उसे रोकना चाहता था, पर उसने मेरी एक न सुनी फ़ौरन दौड़ता चला गया. कुछ देर बाद वह गर्मागर्म चाय लिये हाज़िर था. उसने कहा, ''लीजिए साहब चाय.'' मैंने चाय लेते हुए कहा, ''बैठो सतीश तुमसे कुछ बात करनी है.''

वह पास पड़े एक स्टूल पर बैठने लगा. मैंने कहा, ''अरे वहां स्टूल पर क्यों बैठ रहे हो, कुर्सी पर बैठ जाओ.'' ''नहीं साब मैं यहीं ठीक हूं, आप कम से कम बैठने के लिए तो कह रहे हैं, और सब लोग तो अगर बैठा देखते हैं तो डांटते भी हैं और कैंटीन के मैनेजर से भी शिकायत कर देते हैं. वो अलग से डांटता है. अब आप ही बताइए साहब सारा दिन ऊपर नीचे दौड़ते–दौड़ते क्या हमारे पैर नहीं दुख जाते हैं. आख़िर हम भी तो इंसान हैं, पर हमारी तकलीफ़ को कोई नहीं समझता है.''

आज पहली बार मैंने उसकी आवाज़ में दर्द महसूस किया था. इतने सालों में पहली बार मैंने उससे पूछा, ''तुम अपनी ज़िंदगी के बारे में कुछ बताओ सतीश, कहां के रहने वाले हो, घर में कौन-कौन है, यहां कैसे आ गये?''

सतीश ने कहना शुरू किया, ''मैं केरल का रहने वाला हूं, वहां एक शांत, सुंदर नदी किनारे के मेरा गांव था, गांव में चारों तरफ हरियाली थी पर मेरे घर में सूखा था. घर में बहुत ग़रीबी थी. मेरे मां-बाप दूसरों के खेतों में मज़दूरी करते थे. हम पांच भाई बहिन, और दो मां-बाप यानी सात जनों का परिवार, कमाई बहुत कम थी, सबका पेट कैसे भरता? रोज़ लगभग आधा खाना खा कर गुज़ारा करना पड़ता था. कभी हममें से कोई बीमार हो जाता था तो डॉक्टर से दवा लाने तक के पैसे नहीं होते थे. फिर भी हम भाई बहिन बड़े ख़ुश थे. हमारे जैसे कई और भी घर थे. हम सब बच्चे मिल कर ख़ूब शैतानी करते थे. टेलीविज़न तो हमारे गांव में किसी के घर नहीं था. इसलिए हमारा पूरा मनोरंजन बाहर खेलने में जाता था. सब बच्चे मिल कर ख़ूब खेलते-कूदते थे इसलिए हम लोग बीमार भी बहुत कम पड़ा करते थे. रोज़ नदी में नहाते थे, नाव चलाते थे. और एक दूसरे के साथ नदी पार करके दूसरे किनारे पर जाने की रेस लगाते थे.

मैंने पूछा, ''और पढ़ाई? तुम लोग पढ़ते नहीं थे क्या?'' सतीश बोला, ''पढ़ते भी थे. गांव में एक सरकारी स्कूल था. उसके मास्टर साब सप्ताह में तीन दिन ही स्कूल आते थे. बाक़ी तीन दिन वो मुझे ही बाक़ी बच्चों को पढ़ाने की ड्यूटी देकर लापता रहते थे. यह तो बाद में पता चला के वो तीन दिन अपने खेतों में खेती किया करते थे. पर वो जो भी पढ़ाते थे मैं उसे बड़े ध्यान से पढ़ता था. पांचवीं क्लास में मैं अव्वल आया था. पर उसके बाद....''

यह कह कर वह चुप हो गया था. मैंने पूछा, ''फिर उसके बाद क्या हुआ.'' सतीश के चेहरे पर उदासी की रेखाएं उभर आयी थीं. उसके बाद एक साल गांव में बहुत सूखा पड़ा था. हमारे घर में खाना खाने तक के लाले पड़ गये थे. तब हमारे गांव में इस कैंटीन वाले सेठ का एक आदमी आया. उसने मेरे मां बापू और मेरे कई दोस्तों के मां बापू को समझाया कि इन लोगों को मुंबई शहर भेज दो, वहां ये लोग काम करेंगे, कुछ पैसे कमायेंगे तो तुम्हारे घर का खर्च चल जायेगा. हमारे ग़रीब मां बाप के आगे और कोई रास्ता नहीं था. और हमें उस आदमी के साथ यहां आना पड़ गया. अब यहीं रहते हैं और हर महीने कुछ पैसे बचा कर घर भेजते हैं ताकि वहां का ख़र्च चल सके.''

सतीश की यह कहानी सुन कर मेरी आंखों के सामने अपने शहर के उन बच्चों की तस्वीर घूमने लगी, जो अपने मां बाप के पैसों की बिलकुल भी परवाह नहीं करते हैं और मां बाप से अनाप-शनाप चीज़ों की मांग करते रहते हैं. उनकी उम्र का एक लड़का मेरे सामने बैठा था जो उनकी जैसी खेलने की उम्र में कितनी ज़िम्मेदारी के साथ अपने मां बाप की मदद कर रहा था. क्या इसका मन नहीं करता होगा दूसरें बच्चों को मौज मस्ती करते हुए देख कर. यह उस

वक़्त कैसे अपने मन को समझाता होगा. जब यह दूसरे बच्चों को अपने मम्मी-पापा के साथ घूमता देखता होगा तो क्या इसका मन अपने मां-बाप को याद नहीं करता होगा?

मैंने सतीश से पूछा, ''क्या तुम्हारा दिल नहीं करता है आगे पढ़ने के लिए?'' सतीश बोला, ''क्यों नहीं करता है? मैं भी पढ़ लिख कर बड़ा आदमी बनना चाहता हूं.'' मैंने कहा, ''सच.'' उसने कहा, ''सच.'' मैंने कहा, ''तो फिर कोशिश क्यों नहीं करते? यूं ही काम और खेल में अपनी ज़िंदगी क्यों गंवा रहे हो? यहां कितने सारे नाईट स्कूल हैं, अगर तुम पढ़ाई नहीं करोगे तो ज़िंदगी भर इसी कैंटीन के वेटर बने रहोगे'' उसका चेहरा मेरी बात सुन कर लटक गया था. मुझे उसका लटका हुआ चेहरा देख कर लगा कि मैंने बिना बात उसका दिल दुखा दिया है.

यह बात उस दिन वहीं पर ख़त्म हो गयी थी. दूसरे दिन से सतीश फिर से अपनी ड्यूटी पर था. उसी तरह से हंसते मुस्कराते. पर अब मुझे यह सोच कर ताज्जुब होने लगा था कि जीवन में इतनी परेशानियां झेलने पर भी यह लड़का कितना ख़ुश रहता है. मतलब कि ख़ुश रहने के लिए महंगे मंहगे खिलौनों की ज़रूरत नहीं होती है, न ही विडियो गेम्स की, न दिन भर कंप्यूटर पर बैठने की, बल्कि सबके साथ मिलजुल कर रहने में ज़्यादा ख़ुशी हासिल हो सकती है. और मैंने तो ख़ुद उन सब लड़कों को पूरे दिन के थका देने वाले काम के बाद मिल कर खिलखिलाते हुए चोर-सिपाही खेलते हुए देखा था.

क़िस्मत से कुछ दिनों बाद, एक दिन फिर से मुझे ऑफ़िस के बाद देर तक रुकना पड़ा था. उस दिन भी मैं सीढ़ियों से नीचे उतर रहा था. सातवीं मंज़िल के पास पुहंचा तो मुझे फिर से उन बच्चों का शोर सुनाई दिया. मैंने यूं ही वहां झांका तो देखा कि सभी बच्चे चोर-सिपाही खेल रहे थे लेकिन उनमें सतीश नहीं था. अब मुझे अपनी पिछली बात पर और दु:ख होने लगा.

दूसरे दिन जब सतीश सुबह चाय लेकर आया तो मैंने पूछा, ''अरे सतीश कल शाम तुम कहां थे? अपने साथियों के साथ खेल नहीं रहे थे?'' तो वह हंस कर टाल गया.

बात यूं ही आयी गयी हो गयी. मुझे ऐसा लगने लगा था कि उसके निजी जीवन में दख़ल देकर मैंने बहुत ग़लत किया है. इसलिए मैंने इस बारे में उससे बात करना बंद कर दिया था.

अप्रैल के आख़िरी सप्ताह की बात है एक दिन अचानक सतीश मिठाई का डिब्बा लिये हमारी मंज़िल पर आया. सब लोग उससे इस डिब्बे का रहस्य पूछने लगे थे. वह सीधे मेरे पास आया और डिब्बा खोल कर मिठाई मेरे सामने रखी. ''साब, मिठाई लीजिए.'' सतीश बोला. उसके चेहरे पर ख़ुशी छायी हुई थी. मैंने एक टुकड़ा उठाते हुए पूछा, ''मिठाई? किस बात की?'' उसने बताया कि, ''साब मैंने आठवीं क्लास पास कर ली है, वो भी फ़र्स्ट डिविज़न में.'' मेरे मुंह से निकला, ''क्या? तुमने पढ़ना कब शुरू किया?'' उसने कहा, ''साब जिस दिन आपने मुझसे कहा था कि अगर मैं पढ़ा नहीं तो मुझे ज़िंदगी भर इसी कैंटीन में वेटर रहना पड़ जायेगा, उसी दिन रात को मैंने तय कर लिया था कि अब मैं वापस पढ़ाई करूंगा. इसलिए मैंने एक नाईट स्कूल में दाख़िला ले लिया था. जब मेरे दूसरे साथी यहां खेल रहे होते थे तब मैं वहां पढ़ रहा होता था.'' मैंने कहा ''पर इम्तिहान की तैयारी तुमने कैसे की, सारा दिन तो तुम कैंटीन में भागा दौड़ी करते रहते हो?'' उसने कहा, ''रात को जब सब सो जाते थे तब मैं नीचे सड़क के किनारे बैठ कर ट्यूब लाइट की रोशनी में पढ़ा करता था.'' मैंने पूछा, ''तुझे खेलने की कमी नहीं महसूस होती थी, तेरे सभी साथी तो खेलते रहते थे.'' उसने कहा, ''मुझे अपनी ज़िंदगी के लिए बेहतर रास्ता तलाशना था, इसलिए मैंने खेल को पीछे रख दिया था. मैं रविवार के दिन खेल लिया करता था.''

उसकी इस सफलता पर मेरी ख़ुशी का कोई ठिकाना नहीं था. हमारी मंज़िल के बाकी सभी लोग भी बेहद ख़ुश थे. हम सबने मिल कर उसे हज़ार रुपये इनाम में दिये.

कुछ दिनों बाद बाद शाम को जब मैं ऑफ़िस की सीढ़ियां उतर रहा था तो मैंने पाया कि सातवीं मंज़िल पर पूरा सन्नाटा था. मैंने सिक्यूरिटी गार्ड से इसका कारण पूछा तो उसने बताया कि ये सारे बच्चे नाईट स्कूल में पढ़ने गये हैं. सतीश उन सब के लिए प्रेरणा बन गया था, अब सब उसकी तरह से ही पढ़ कर आगे बढ़ना चाहते थे. उस दिन सातवीं मंज़िल से नीचे उतरते हुए मुझे एहसास हुआ कि सीढ़ियां थकाती नहीं हैं बल्कि चुनौतियों से जूझने का हौसला देती हैं.

❖❖❖

कहानी

असली नाम... चरनदास

✍ *सैली बलजीत*

उसके वास्तविक नाम से शायद ही कभी किसी ने बुलाया हो उसे. दफ़्तर में हाज़िरी रजिस्टर में उसका असली नाम ही दर्ज है, लेकिन क्या मज़ाल कि इस नाम का किसी ने उपयोग किया हो. कभी-कभी तो वह अपना असली नाम लेने की बजाय यही प्रचारित नाम ही ले लेता है—'कल्टू'. उसकी दिनचर्या भी अजीब है... सुबह उठते ही, उसे एक ही तलब होती है. देशी ठर्रा. इसके लिए वह कहीं से भी पैसों का जुगाड़ कर ही लेता है. दो रुपये... तीन रुपये... पांच रुपये... यही उसके उधार मांगने का स्तर है. फिर देशी ठर्रा कौन-सा बाज़ार जाके लाना होता है. इसके लिए उसे इलाक़े के लगभग सारे प्रचलित अड्डों का पता है जहां कौड़ियों के भाव ठर्रा उपलब्ध हो जाता है. कभी तो वह वहीं से पीकर आ जाता है, कभी पतलून की जेब में अद्धा या पऊआ डाले हुए आ जाता है... पूरे दिन भर यही सिलसिला चलता है.

उसके दिन की शुरुआत दारू से होती है. उसके बाद वह इसकी निरंतरता को बरक़रार रखने के लिए तरह-तरह की योजनाएं बनाता रहता है. इसके लिए वह उधार मांगने की अपनी कला को ही आजमाता है, इस काम में वह दक्ष है. शायद ही कोई उससे बच पाया हो... दो-पाच रुपयों का स्तर ही तो होता है उसका.

''तुम्हें कितनी बार कहा है... कमबख़्त एक बार ही सौ-दो सौ रुपया ले जाया करो. सारा दिन भिखमंगों की तरह दो-दो रुपये मांगते रहते हो...'' वहां ड्यूटी पर तैनात किसी सीनियर ने उसको झिझोड़ते हुए कहा था.

वह कहता है, ''दो सौ कौन देता है, बाऊजी... आपने कभी दिये हैं.''

''मैं क्यों दूं... तेरा ठेका तो नहीं लिया ना?''

''तभी तो दो-दो रुपये लेता हूं... उससे किसी को तकलीफ़ भी नहीं होती...''

''पर रहते तो भिखमंगे ही हो ना?''

''क्या करूं, बाऊजी... क्या करूं...?''

''अगर तुझे ये लोग उधार देना बंद कर दें...?''

''ना, बाऊजी ऐसा ज़ुल्म मत करना.... मैं मर जाऊंगा.''

''दारू के बिना कोई नहीं मरता 'कल्टू'... दारू पीओगे, तो एक दिन अवश्य ही मरोगे कहे देता हूं... क्या मिलता है तुझे?

''मजा आता है...'' वह इतना कहते हुए भंगड़ा डालने लगा था और उसकी किलकारियों से आसपास वाले तैश में आ गये थे.

''अब क्या तकलीफ़ हुई? दफ़्तर के बाहर खड़े हो, शर्म करो... यहां से फूटता दिख... नहीं तो अभी तेरी जूतों से परेड कर दूंगा...''

सैली बलजीत

७ जनवरी १९४९
(पंजाब के शहर बटाला में);
विद्युत इंजीनियरिंग (एम. डी. ओ. के पद से सेवानिवृत्त)

लेखन : *लगभग चालीस सालों से देश की सभी पत्रिकाओं व समाचार पत्रों में कहानियां प्रकाशित.*

प्रकाशन : *अपनी-अपनी दिशायें, गीली मिट्टी के खिलौने, 'अब वहां सन्नाटा उगता है', 'तमाशा हुआ था', 'बापू बहुत उदास है', 'मुखौटा वाला आदमी', 'अंधा घोड़ा', 'घरौंदे से दूर', 'वह आदमी नहीं था', 'आज के देवता', 'धूप में नंगे पांव', 'कहर के दिन' (संपादित कहानी संग्रह), 'मकड़जाल' (उपन्यास), 'मेरे आईने में' (संस्मरण), 'टप्परवास', 'घोड़े अब हांफ रहे ह', 'पिताजी जब घर में होते हैं' (कविता), 'नागफनियों के देश में' (नाटक), 'पेंग्विन प्रकाशन से संपादित कहानी संग्रह', 'कथा-ऊर्जा' में कहानी संकलित.*

विशेष : *पंजाबी वि. विद्यालय एवं गुरुनानक देव वि. विद्यालय (पटियाला), हि. प्र .वि. विद्यालय (शिमला) से सैली बलजीत की कहानियों पर एम. फ़िल. के लिए शोधकार्य. अनेक राष्ट्रीय सम्मान प्राप्त.*

''लो मार लो..'' उसने अपना सिर उसके आगे झुका दिया था.

''अब नख़रे करेगा..? कहा ना... चलता दिख....''

''यहां खड़ा रहूंगा तो क्या हो जायेगा, बाऊजी...?''

''तेरा सिर हो जायेगा.. भाड़ में जा... अबके बकबक की तो मेरे से बुरा कोई ना होगा...''

तभी दफ़्तर के बाहर खड़े सुरक्षाकर्मी ने उसे ललकारते हुए धकिया दिया था, ''इसका इलाज मेरे पास है... शर्मा साहब ऐसे बातों से मानने वाली 'शय' नहीं है यह...'' इसके साथ ही उस आदमी ने उसे कमीज़ के कॉलर से लगभग घसीटते हुए, उसकी गर्दन पर पांच-सात झापड़ धर दिये थे, ''बोल ओय... बहुत मस्ती चढ़ी है तुझे... तुम्हें आदमियों की तरह रहना सिखा दूंगा... बोल अब निकालेगा गाली?''

''नहीं सरदारजी....'' कल्टू ने हाथ जोड़ दिये थे.

''तेरा बाप भी हाथ जोड़ेगा... तू तो अभी पैदा ही नहीं हुआ... तुझे कहा था ना... दफ़्तर के बाहर हंगामा नहीं करना बोल, कहा था ना?''

''कहा था जी....माफ़ी दे दो... कान पकड़ता हूं...''

''अब यहां नहीं दिखना.... फूट जा...'' उस संतरी ने उसे लगभग धोबी के कपड़ों की तरह थपड़ा दिया था.

उसके बाद वह लगभग एकाध दिनों तक चुप हो जाता है. फिर तीसरे दिन उसे दौरा पड़ने लगता है. फिर से अपनी हरकतों पर उतर आना उसका नियमित क्रम है. दारू तो उसकी हड्डियों में रच बस गयी है... उसे क्या छोड़ेगा वह... लेकिन... दारू पीकर जब वह उलटी-सीधी हरकतें करता है, इसके लिए वह अक्सर ऐसी पिटाई सह चुका है कई लोगों की. पुलिसवाले संतरियों की, सामने सड़क की दूसरी ओरवाली चाय-पकौड़ों की दुकानोंवालों की... साइकिल के टायरों को पंक्चर लगानेवाले गुलजारी की... दफ़्तर के बाऊओं की... कॉलोनीवालों की... उसे लगभग हर आदमी ने एक बार तो अवश्य ही लतियाया होगा.

यह उसकी ज़िंदगी की अंधी दौड़ का दूसरा मंत्र है. वह जब ट्रांस्फर होकर आया था तो सबसे पहली भेंट उसके साथ ही हुई थी. उसे याद है, देखने में वह इतना विक्षप्त नहीं लगा था, लेकिन उसकी बातों से, उसके ढंग से, उसके रहन–सहन से स्वत: ही उसकी ज़िंदगी के पन्ने एकाएक खुलते गये थे. उसे सबसे प्रमुख समस्या आवास की महसूस हुई थी यहां आकर. शहर से लगभग तीन किलोमीटर बाहर है यह पॉवर हाउस. यहां दफ़्तर है... कॉलोनी है... कॉलोनी में कितने ही क्वार्टरों के अतिरिक्त पुलिसवालों के संतरियों के लिए बनी बैरके हैं. उनका लंगर हॉल है. उनकी मेस है... थानेदार के लिए अलग से एक कमरा है. कितने ही बाथरूम और टट्टी ख़ाने हैं. पेशाब घर है. पूरा दिन यह 'पॉवर हाउस' लोगों—स्टॉफ के आने जाने से लगभग जीवंत रहता है. शाम ढलते ही यहां मात्र एकाध कर्मचारी रह जाते हैं. उसके साथ रह जाते हैं पुलिसवाले ड्यूटी करने हेतु संतरी.. रात होते-होते और भी सन्नाटा पसर जाता है.

उसके पास भी आया था कल्टू, आवास के लिए गुज़ारिश करता रहा था. उसे कोई भी अपने साथ रखने को तैयार नहीं था. लगभग सभी ने उसे ठुकरा दिया था. कॉलोनी में लगभग सभी तो फ़ैमिली वाले लोग हैं. सिर्फ़ एकाध क्वार्टर ही में कुछ ऐसे लोग हैं जो घर से बहुत दूर होने के कारण अपने परिवार साथ नहीं रखे हुए हैं. यहां वे लोग अकेले रहते हैं, क्वार्टर को शेयर कर लेते हैं... वह भी तो उन्हीं लोगों में से एक है. उसके साथ पहले ही तीन जने रहते हैं क्वार्टर में... रोटी का जुगाड़. संतासिंह थानेदार की मेहरबानी से पुलिसवालों की मेस में हो गया है. सभी का. इससे स्वयं खाना पकाने के झंझट से मुक्ति मिल गयी थी.

कल्टू भी अक्सर खाना खाते वक़्त आ टपकता है. उसकी आंखें स्वयं बहुत कुछ कह जाती हैं. उसके रहने का जुगाड़ कई सालों से बंद पड़े एक गंदे से कमरे में हो गया था. यह कमरा लगभग 'पॉवर हाउस' की इमारत के सामने ही पड़ता है. कभी इसे रिसेप्शन रूम के रूप में प्रयोग में लाया जाता रहा होगा, ऐसा उस कमरे की बनावट से ज़ाहिर था. इसके साथ ही चौबीसों घंटे पानी रिसती हुई टोंटी थी और एक सड़ांध युक्त गंदा सा लैटरीन, जहां कल्टू ने अपनी चिंदी-चिंदी हुई प्लास्टिक की फोल्डिंग चारपाई डाल ली थी. चारपाई के नीचे कई जगहों से उधड़ा हुआ बैग डाल लिया था. इसके अतिरिक्त इक्का-दुक्का स्टील के बर्तन. कांच के दो तीन गिलास. प्लास्टिक का एक मटमैला सा जग... अब यह कमरा सार्वजनिक हो गया था. यहां अब दिन भर ताश खेलनेवालों का जमावड़ा बना रहता था. ताश के साथ-साथ जुआ भी

सामान्य बात हो गयी थी. इससे कल्टू की बांछें खिल जाने लगी थीं. उसको हर गेम के हिसाब से पांच रुपये मिलने लगे थे. इससे उसकी दारू की तलब पूरी होने लगी थी.

''ले कल्टू अब हो गये ना पचास रुपये?'' एक ताशवाला खिलाड़ी सामने पड़े रुपयों में से गिनते हुआ कहता है.

''बिलकुल हो गये जी.. जाऊं मैं..? शाम होने को है...''

''उठा पचास रुपये और लेकर आ जा फटाफट एक बोतल.''

''इतने जने हैं.. एक बोतल?.. निकाल और एक पचास का पत्ता...''

''तू डाल लेना... भैण... एक बोतल तो तू गटक जाता है... डाल लेना. मर तो नहीं जायेगा....?''

''निकाल अब... फिर से ना कहना कम लाया है... फिर से मुझे ही भिजवाओगे ना?... फिर है भी तो कितनी दूर... साइकिल पर जाते पांव फूल जाते हैं...''

''अब जाता है कि एक झापड़ लगाऊं...?''

''कहा ना एक बोतल थोड़ी पड़ेगी... आठ जने हैं...'' उसने आदमियों को गिनती करते हुए कहा था.

''ले अब.. ख़ुश हो ना? फटाफट जा और मिनटों में वापस आ... देर से आया तो... जूते खायेगा...''

ताश के खिलाड़ी मूड में आ गये थे. वह जाने कहां से ले आता है, इतनी तेज़ दारू, इस बात से सभी खिल गये थे. सच ही सभी दारू मंगवानेवाले लगभग उसे ही भिजवाते हैं. हर चक्कर में उसका हिस्सा लगभग तय होता है.

हर सुबह उसे बहुत सबेरे उठ जाना पड़ता है. उसे सोने ही नहीं देते. आने जानेवाले कोई न कोई उसे तंग करता ही है. अगर वह इनकार करे तो इनकार करने का खामियाज़ा उसे झापड़ खाकर भुगतना पड़ता है. अभी कल रात ही ड्यूटी वाला संतरी उस पर झपटा था.

''उठ मां के ख़सम.. अभी सो गया...? अभी तो नौ ही बजे हैं... उठता है कि नहीं...?''

वह ऊंघने लगा था, ''सोने दे ना... कंते भा.... थकावट हो गयी है..?''

''हल चलाता रहा है पूरा दिन... स्साले.. पूरा दिन दारू पीता है.... कभी कोई काम भी किया है... सभी तेरी जान को रोते हैं. पॉवर हाउस वाले... उठ... उठ.... नहीं तो लगाऊं एक झापड़...'' वह संतरी उसे उठाने लगा था, धकियाते हुए.

''ना कर यार... कहा ना.... नींद आयी है... बता क्या काम है?''

''काम तो जानता ही है तू.... एक बोतल लानी है... साइकिल ले जा बिंदे की. ले पकड़ पचास रुपए...''

''नहीं कंते भा... ठंड बहुत है....''

''बहाने ना बना... उठ.... अभी तेरी ठंड दूर करते हैं, मीट बना है आज लंगर में... आ जाना अपना बर्तन लेकर...?

''झूठ तो नहीं ना कह रहा...?'' उसकी बांछें खिल गयी थीं.

''कहा ना, उठ तो सही...'' संतरी ने उसे झिझोड़ते हुए कहा था.

''पेग भी देगा ना...?''

''सब कुछ मिलेगा... उठ शबाश... बड़ा अच्छा आदमी है तू कल्टू शाह...''

देखते ही वह खटियल सी साइकिल ठेलते हुए मेन गेट से बाहर हो गया था. लगभग आधे घंटे के बाद वापस आया था. उन लोगों की ओर मुंह बाये देखते हुए उसे कितनी देर हो चली थी. उसे उन लोगों ने लगभग फुसला लिया था, ऐसा उसने भीतर तक महसूस किया था. उसकी तलब मचल उठी थी.

उसने याचना की, ''अब डाल दे एक पेग... फिर नहीं कहूंगा...''

''क्यों बे... पैसे तूने दिये हैं बोतल के...?''

''लेकर तो आया हूं ना....''

''तो मालिक बन जायेगा... पहले दिया तो है एक पेग.. फिर स्साले अब बस भी हो जा... क्यों मरने लगा है?''

''कुछ नहीं होगा... मीट का पीस तो देना एक?''

''कहा था ना, लंगर में आ जाना... डाल दूंगा. पूरी कटोरी भर के... हौसला तो कर ना...?''

''तुम भी तो खा रहे हो... ला दे... '' उसने थाली में डाले हुए मीट की बोटी उठा ली थी,

''हमारा मुक़ाबला करेगा, स्साले...?''

''नहीं तो....''

''हमारे बर्तन में खायेगा? अपनी औक़ात देखी है.... तेरी...'' इसके साथ ही उस पर झापड़ों की बौछार कर दी थी. इसके साथ ही दूसरे संतरी भी उसे लतियाने लगे थे. उसे लगभग अधमरा कर दिया था. आसपास वाले क्वार्टरों से भी लोग भागे-भागे वहां आ गये थे.

उसका हुलिया ही बिगाड़ दिया था. मार-मार कर उसकी नाक से ख़ून रिसने लगा था. उसके लिए यह मार क़तई नयी नहीं थी. यह तो उसकी दिनचर्या का ही एक अभिन्न अंग है. लेकिन, उस पर तरस खाने वाला कोई नहीं. सभी उसे लतिया देते हैं. किस बात के लिए लतियाते हैं, यही कि वह नीची जाति का है. नीची पोस्ट पर नौकरी करता है. सारा दिन कंट्रोल रूम की सफ़ाई करता है. झाड़-पोंछ करता है... बाऊ लोगों के घरों में भी उसे सफ़ाई के लिए ही बुलाते हैं... या कपड़े धुलवाने के लिए... उसके एवज उसे क्या मिलता है... एक चाय का कप... कभी कोई बाऊ लोग अधिक मेहरबान हुआ तो एक पेग मिलीटरी वाली 'फ़ौजी रम' का भी मिल जाता है... या... इसके बदले... ड्यूटी से कभी कभार छुट्टी मिल जाती है... या... उधार में पैसे. वह सोचता है... उसकी ज़िंदगी भी कैसी है... अगर उसे कुछ मिला भी है तो उसके बदले में उसने अपनी जान ही तोड़ी है. फिर एहसान वाली बात तो नहीं हुई ना. वह जाने कब अपने बिस्तर पर आ गया था... लेकिन... नींद आंखों से ग़ायब थी. वह कराहते हुए करवटें लेता रहा था.

सुबह वह अपना बिस्तर, चारपाई लेकर उसके क्वार्टर में आ गया था. सीढ़ियां फलांगते हुए. आते ही अपनी परिचित याचनावाली आवाज़ में बोला था, ''अब मैं वहां नहीं रहूंगा जी. उस कबूतर ख़ाने में...''

''क्यों क्या बात हुई... यहां क्या लेने आया है...?''

''वे लोग पीटते हैं मुझे... कल रात भी पीटा मुझे.. संतरी लोगों ने... मैं वहां नहीं रहूंगा...''

''पीटते हैं तो रपट लिखा दे ना उनकी...''

''डर लगता है... और पीटेंगे...मुझे बचा लो बाऊजी.''

''फिर हम क्या करें?''

''अपने साथ रख लें..., बाहर बरामदे में चारपाई डाल लूंगा... बर्तन भी अलग हैं मेरे...''

''ना भाई... अपना स्टेटस देखा है कभी... हमारे साथ रहेगा? ऐसा सोच कैसे लिया तूने कल्टू? अपनी औक़ात देखी है? तुम्हारे साथ प्यार से बोल लेते हैं... या हंस लेते हैं तो क्या तू हमारे बराबर हो गया?''

''नहीं तो बाऊ जी, आप ही तो हैं हमारे माई-बाप...''

''तभी तो कहा ना... औक़ात में रहा करो...''

''क्या है मेरी औक़ात... बता दो बाऊजी...?''

''तुझे पता तो है ना? दफ़्तर में जो लिखवाया है, वही रहोगे ना... बोलो...? हमारे बराबर तो नहीं ना हो जाओगे?''

''नहीं तो... सोचा था कि आप तो तरस खायेंगे मुझ पर.''

''अब उठा अपना बोरिया-बिस्तर... नहीं तो उठा के बाहर पटकूंगा.''

इसके साथ ही उसने उसकी चारपाई और बिस्तर बालकॅनी के रास्ते नीचे सड़क पर फेंक दिया था. जाने वह ग़ुस्से को कैसे पचा गया था, वरना उसने तो कल्टू को लगभग लतियाते हुए सीढ़ियों के रास्ते नीचे तक धकियाते हुए जाना था.

''फिर आयेगा इधर...? समझ गया ना? आगे से अपनी औक़ात में रहना.''

''आपने भी तो वही किया है बाऊजी... जो संतरी लोगों ने किया है... सामान फेंक दिया मेरा... इससे बेहतर तो था कि आप भी पीटते मुझे. औक़ात ही यही है ना... पिटाई खाने की...?'' वह सुबकने लगा था.

अपनी चारपाई बिस्तर, बैग उठाये वह धीरे-धीरे चलते हुए आंखों से ओझल हो गया था.

अगले दिन उसे पुलिसवालों की बैरक की सफाई करते हुए देखा था. इसके बदले में उसे एक कप चाय मिलनी थी और सुबह के नाश्ते वाला एक परांठा. इसी बात के लिए तो बुलाते हैं वे उसे. वह भी जानता है कि एक कप चाय या एक परांठे के लिए उसे क्या करना है. यही तो है इसकी आक़ात.

वह उसे देखते ही ग़ुस्साया था उस पर, ''कल रात तो उनकी पिटाई खायी है तूने... फिर वही... उन्हीं लोगों के पास चला आया... किस मिट्टी का बना है तू?''

''चाय तो पीनी होती है ना, बाऊजी.'' उसने सहजता से उत्तर दिया था.

''बाहर वाली पम्मी की दुकान से नहीं पीता अब?''

''उसने भी उधार बंद कर दिया है... अब बताओ यहां भी ना आऊं तो मर जाऊं ना भूखा...?''

''यहां तो भी वही करता है. जान तुड़वाता है अपनी...''

''इससे मेरा क्या घिस जाता है... चार घड़ी झाड़ू ही लगाना होता है...''

''दफ़्तर में सफ़ाई नहीं करनी...?''

''अभी आता हूं बाऊजी... अभी तो आठ बजे हैं. मैं अभी आया जी...'' उसने सहजता से उत्तर दिया था, जैसे उसे किसी से भी गिला नहीं है, उसने तो समझा था कि कल्टू उससे कई दिनों तक मुंह फुलाये हुये मिलेगा. लेकिन .... वह तो पूर्ववत उसी तरह मिला था. उसे भीतर तक ग्लानि हुई थी कि पिछले महीने उसने कल्टू की लगभग पंद्रह दिनों की ग़ैर हाज़िरी लगायी थी.

उसे सभी ने तो तनख़्वाह वाले दिन ही पकड़ना होता है. वरना पूरा महीनाभर उसका काम उधार में पैसे लेना ही होता है. सभी अपनी-अपनी डायरियों में अंकित उधार का ब्यौरा लिये, तनख़्वाह वाले दिन दफ़्तर के दूसरे लेबर के लोग, बाहर सड़कवाली दुकानों वाले... बाऊ लोग... ढाबेवाला.... चाय के खोखे वाली पम्मी... साइकिलों की मरम्मत वाला गुलजारी... सभी तो सम्मिलित होते है... और तनख़्वाह वाले कागज़ पर मात्र अंगूठा ही लगाता है वह... बस... तनख़्वाह जाने कितने टुकड़ों में बट जाती है... हर लेने वाला, अपना-अपना टुकड़ा जेब में डाले हुए, वहां से निकल आता है... उसके पास बचते हैं तो मात्र कुछेक रुपये... वह गिनती करता है.... उसकी आंखें बुझ जाती है... लेकिन वह इससे भयभीत नहीं होता. उस पर कोई असर नहीं होता कि हर महीने उसकी तनख़्वाह टुकड़ों में बट जाती है.

उसे लगता है, वह तो जन्मा ही इन लोगों की पिटाई खाने के लिए ही है. सुबह उठने से लेकर रात होने तक दारू की तलब के लिए उसे कितने लोगों के आगे उधार के लिए हाथ फैलाना पड़ता है, मार खानी पड़ती है. तमाशा बनना पड़ता है. उसे गांव गये हुये भी महीनों हो जाते हैं, जाने के लिये किराये का जुगाड़ बने तो ही जाये ना वह, बीवी उसे समझा-बुझा कर हार गयी है... उसका बाप फ़ौज से पेंशन पर आया है... उसकी पेंशन का सहारा ना होता तो अब तक उसकी बीवी-बच्चे भूखे मरे गये होते. एक दिन आ ही तो गयी थी उसकी बीवी.... यहां... आते ही आसमान सिर पर उठा लिया था.

''मरजाने यहां तू दारू पीकर पड़ा रहता है... वहां बच्चे तेरी जान को तरसते हैं... कहां जाती है तेरी तनख़्वाह ...? वह बीवी पर डपटा था, धीरे नहीं बोल सकती? ... यहां आयी ही क्यों तू?''

''आ गयी हूं... अब जूते मारूंगी तेरे सिर पर.... तब जाकर होश आयेगा... कहां है तेरे अफ़सर...''

''तूने क्या लेना है...?''

''मैं तो तेरा जुलूस निकाल दूंगी... मरजाने... गांव आये हुए महीनों हो गये तुझे... तू फ़ौज में तो भर्ती नहीं हो गया?''

''कहा ना... जाओ... अंदर बैठकर बात करते है...''

''तेरे अफ़सर बैठते कहां है... तेरी तनख़्वाह अब मैं लेकर जाया करूंगी... हर महीने... तुझे आदमी बना के छोडूंगी.'' वह बराबर तौल-तौल के गालियां निकालने लगी थी.

भीड़ का जुट जाना स्वाभाविक था.

दफ़्तर के दूसरे लोगों ने उसकी बीवी को समझा दिया था कि तनख़्वाह प्राप्त करने के लिए कुछ औपचारिकताएं पूरी करनी होती है... चाय इत्यादि पिला दी थी उसने, पम्मी की दुकान से ... उसकी बीवी उसी शाम को वापस चली गयी थी. किसी ने उसे छोड़ दिया था, ''कल्टू... भाई तूने तो मोती दान किये होंगे. पिछले जन्म में... इतनी ख़ूबसूरत बीवी मिली है ओये...''

''तूने अभी देखा ही क्या है... अभी तो सुर्ख़ी पाउडर नहीं लगाया था... कमबख़्त सुसरी ने...''

''कुछ दिया भी है... या भूखी मारने को भिजवा दिया गांव में...''

''आयी थी तनख़्वाह लेने, ऐसे ही थोड़े तनख़्वाह मिल जाती है... जान मैं तोड़ूं और तनख़्वाह लेने वो आ जाए... ना ओये... कहां लिखा है...''

''उसने अगले महीने आना है... देख लेना... आदमी की तरह रहना सीख. छोड़ दे दारू... वरना ढूंढ़ता फिरेगा... ऐसी ख़ूबसूरत बीवी को...''

''कहीं नहीं जायेगी...''

''नहीं ओए... इनको संभालना पड़ता है... फिर तू तो यहां पीकर मरा-पड़ा रहता है... जनानियों को पैसा ही नहीं

चाहिए... मैं तो कहता हूं... साथ रख उसे... वरना जनानी भी गंवा बैठेगा...'' इसके साथ ही उस आदमी ने औरतों को वश में रखने के ढेर सारे मंत्र उसे समझाते हुए, हिदायतों का पुलिंदा थमा दिया था.

उसकी मसख़रों वाली ज़िंदगी के कितने ही तो रूप हैं. कभी-कभी तो लोग उसे बहरूपिया ही समझ लेते हैं. पूरा दिन उसे तरह-तरह की ऊल-जुलूल हरकतें ही करनी होती हैं.

कल पूरा दिन वह पॉवर हाउस के ठीक सामने वाली सड़क पर ख़ाकी वर्दी पहने, आते-जाते हुए स्कूटर वालों को डराता-धमकाता रहा था. जाने पुलिसिया टोपी वह कहां से ले आया था. जाने उसके जीवन का कौन-सा रूप था यह. उसके रूप तो सभी ने उसकी आदतों के अनुरूप रख छोड़े हैं—शराबी.. जुआरी... सनकी... शैतान... नशेड़ी.... मजमेबाज़... तमाशेबाज़...

शाम को वह पैंट की जेब में से मुचड़े से रुपये निकालते हुए खिल गया था.

''इतने पैसे... कहां से हाथ मार लिया...?''

''आज तो मज़ा आ गया, बाऊजी... ख़ूब तगड़ी दिहाड़ी बनी है आज... कोई ना कोई तो फंस ही जाता रहा है...'' उसने तपाक से कहा था.

''कौन तेरे चक्कर में आ गया? ऐसे ही तो नहीं इतने रुपये कोई दे गया... कौन सा नया मंत्र फूंक दिया आज?''

''पुलिसिया वर्दी की करामत है बाऊजी... टोपी मेरे पास पड़ी थी... अमृतसर के कबाड़ी बाज़ार से ख़रीदी थी... काली बेल्ट भी थी... जूते तो फिर मिल ही जाते हैं... 'कोके' कहीं से भी फिट करवा लो...''

''तुझे पढ़ना तो आता नहीं... स्साले... उन स्कूटरवालों का लाइसेंस... काग़ज़-पत्र, क्या ख़ाक देखेगा... जाने कौन लोग हैं जो तेरे झांसे में आ जाते हैं...?''

''नई जी.. मैं आदमी देखकर ही रोकता हूं उन्हें.''

''पर है तो झूठ ही ना...'' उन्हें अगर पता चल जाये कि तू तो बिजली मुलाज़म है... तो....कमबख़्त.. जूते खाने वाली बात हो गयी ना?''

वह वहां से खिसक गया था. उस पर ढेर सा ग़ुस्सा आया था.

अभी पिछले महीने ही तो उसे पास वाले गांव के मेले में इसी पुलिसिया वर्दी में देखा था. हाथ में डंडा लहराते हुए, लोगों की भीड़ को कंट्रोल करते हुए... उस दिन भी जूते खाते–खाते बचा था... किसी परिचित आदमी ने उसे पिटाई से बचा लिया था. जाने किस मिट्टी का बना है वह.

वह स्वयं कभी-कभी विस्मित हो जाता है. उसके विभिन्न रूप देखकर.

रात को रोज़ की तरह 'पॉवर हाउस' के सामने वाली सडक पर कल्टू का तमाशा सभी तो देखते हैं. रात को वह तरह-तरह के ड्रामाई करतब करने से नहीं चूकता. मसलन वह बीवी को कैसे आलिंगन करता है. ... कैसे प्यार करता है... कभी भंगडा डांस करने लगता है, कभी ऊंचे स्वर में बुलबलियां मारने लगता है... कान पर हाथ रखे हुए हीर अलापने लगता है.... कभी पास वाले गांव से लाउड स्पीकर से झरते भजनों के साथ अपना स्वर मिलाते हुए गाने लगता है... उसे इस बात का कोई सरोकार नहीं कि जाड़ा पड़ रहा है... उसे तो एक ही धुन कि बस तमाशा होना होता है. ऐसे में वह एक मसख़रा हो जाता है... बाऊ लोगों को रिझाने के लिए... संतरी लोगों के भौंडे आदेशों का पालन करने के लिए... वह एक मसख़रा ही होता है.

उस पर अक़्सर रात को जाड़े में ठिठुरते हुए, आदेशों की बौछार होने लगती है, किस-किस आदेश की पालना करे वह.

एक जना आदेश देता है, ''देख ओये, हो जाये भंगडा डांस...शाबाश...'' इसके साथ ही वह पास पड़े हुए ख़ाली ड्रम को ढोलक में तब्दील कर देता है.

''नहीं ओये... भंगड़ा तो चलता ही रहता है... आज कल्टू बतायेगा कि अपनी घरवाली से कैसे प्यार करता है... उठ भैण... उस दिन करके दिखाया था ना?... आज क्या हो गया तुझे...?'' दूसरा उसे छेड़ता है.

तीसरा जना तुनकता है, ''नहीं... माता की भेंटे बहुत अच्छी गाता है... मैं तो कहता हूं, भेंटे ही सुनें इससे...''

''क्यों बे... मंदिर में बैठे हैं हम... तू तो धार्मिक बातें ही करता है... क्यों मज़ा किरकिरा करता है... बड़ा आया माता का भक्त...'' किसी ने उसे टोक दिया था. पहले वाला रुख़ बदलते हुए कहता है.

''चल उठ कल्टू... हो जा शुरू... समझ ले तेरी बीवी तेरे सामने है... बस दिखा दे... उस दिन वाला सीन...'' दूसरा जना बोला था. उसका दयनीय स्वर उभरता है, ''ठंड लग रही है बाऊजी... मेरे वीरजी... तंग तो ना करो.''

''कुछ नहीं होगा... उठ तो... मर तो नहीं जायेगा...'' इस बार ड्यूटी वाला संतरी बोला था.

''उठा इसे बिस्तर से स्साले को... भैण... एक लगा इसे... जनानियों की तरह नख़रे करने लगा है...'' दूसरा संतरी भी तैश में आ गया था. तीसरा जना बिहुका था.

''रहने दो ना...'' क्यों तंग करते हो बेचारे को...सोने दो ना.'' किसी रहमदिल शख़्स ने तरलता दिखाते हुए कहा था.

संतरी बोला था, ''मर तो नहीं जायेगा... भंगड़ा ही डालने को कह रहे हैं.''

''क्यों डाले वो भंगड़ा, आपका ग़ुलाम थोड़े है... छोड़ो यार.. खायी-पी तुम लोगों ने भी है... उसने भी... क्यों उसके नशे में ख़लल डालते हो...'' वह तरल होते हुए कहता है.

संतरी तपका था, ''तुम क्यों तरल हो रहे हो... उठा के ही छोड़ेंगे इसे... उठा ओये बिंदे, इसे... देखता क्या है, गर्दन से पकड़ पटक दे ज़मीन पर इसे.''

वह फिर बोला था, ''मर जायेगा... क्यों गऊ-हत्या गले डाल रहे हो...?''

तभी तीन-चार जनों ने उसे चारपाई से सोते हुए को उठा लिया था.

संतरी बोला था, ''कल्टू पेग पियेगा... उठ...?''

कल्टू ने गुहार की थी, ''सोने दो ना... मैं फ़िट हूं... क्यों तंग करता है...?''

''भंगड़ा डाल दे... फिर सोना ही है... शाबाश... आज पेग से मुंह फेर रहा है. आज सूरज किधर से चढ़ा है...?'' कोई जना बोला था.

''संतरी स्साब, इसको पकड़ कर डंडेल दो इसकी हलक़ में देखना कैसे डालता है भंगड़ा.'' दूसरा कढ़ियल हो गया था.

दो, तीन लोग ज़बरदस्ती गिलास में भरी हुई शराब उसके गले में उड़ेलने लगे थे. वह बार-बार इनकार करता रहा था. लेकिन उसके हलक़ में उस मंडली ने शराब की गिलासियां डंड़ेलना बंद नहीं किया था. वह सुरूर में आ गया था. उसके पांव स्वयं ही भंगड़ा नाचने को उठने लगे थे.

सभी लोग तालियों से उसका साथ देने लगे थे.

वह बराबर नाचने लगा था. लगभग रात के बारह बज रहे थे. वह जाड़े से कांपने लगा था.

''रुक क्यों गया है...? लगा एक ठुमका और... शाबाश..'' ड्यूटी वाला संतरी उसे आदेश देने लगा था.

''उस्ताद ... अब और नहीं... सोने दो...'' कल्टू ने फिर याचना की थी...हाथ जोड़ता हूं... जाने दे... मार दे मुझे... गोली मार दे... तब तो ख़ुश हो जायेगा...'' वह रोने लगा था.

''छोड़ बंता सिंह... क्यों गऊ-हत्या गले डाल रहे हो?'' दूसरे जने ने उसे सचेत किया था.

''नख़रे करता है. शराबियों की हड्डी बहुत पक्की होती है. ऐसे ही बक-बक करता है. उठा इसे मां के ख़सम को...'' संतरी बंता सिंह बोला था.

उसे एक बार फिर ज़बरदस्ती उठा दिया था सभी ने.

वह भंगड़ा डालता रहा था...बुलबलियां मारता रहा था... वह धड़ाम से गिर गया था सड़क पर... सिर से ख़ून बहने लगा था. जाड़ा अपनी अंतिम सीमा फलांग गया था.

कोहराम मच गया था. उसे उठाकर उसके बिस्तर पर लिटा दिया था. सभी भयभीत हो गये थे.

सुबह वह उठा ही नहीं. उसे उठाने की सभी कोशिशें बेकार रहीं. वह इस जहान से उठ गया था, इस ख़बर ने क्षणों ही में जैसे जंगल में लगी आग का काम किया था. एक मसख़रा ख़ामोश हो गया था. उल्टी-सीधी हरकतों वाला शख़्स अब स्थिर हो गया था.

वह सोचने लगा था कि आख़िर उसका नाम कल्टू ही क्यों रखा था लोगों ने... उल्टी-सीधी हरकतें करने के कारण शायद... लेकिन, सबसे प्रमुख बात तो यही है कि उसकी मौत के लिए कौन ज़िम्मेवार है, ड्यूटीवाला संतरी... कॉलोनीवाले दूसरे बाऊ लोग... दफ़्तरवाले लोग...ताशबाज़ी के लोग... उसके दूसरे साथी... उसे उधार में पैसे ना दिये होते तो... वह बच जाता शायद... लेकिन... इसकी मौत के लिए एक पूरी जमात ज़िम्मेवार है. इसमें वह भी तो शामिल है... लेकिन फ़िलहाल सभी ने चुप रहने की क़सम ली है....

१२८८, लेन-४, श्रीराम शरणम् कॉलोनी, डहहौज़ी रोड, पठानकोट (पंजाब)-१४५००१.
मो. ९८७८०७८५७०

लघुकथा

'नानू' के उदार मित्र

✍ *डॉ. सीमा शाहजी*

नानू भाबोर घामनी गांव में रहता है. उसका परिवार बहुत ही ग़रीबी में अभावों से घिरा रहता था. वह पड़ोसी के जानवर चराता कुछ काम करके अपने परिवार की मदद करता है. लेकिन स्कूल जाते बच्चों को देखकर उसका मन होता है कि वह भी स्कूल जाये, पढ़े और बड़ा आदमी बने. कई सपने बुनता रहता है.

इस वर्ष फसल अच्छी हुई थी. नानू के मां-बाप ने उसे एक प्रायवेट स्कूल में दाख़िल करवा दिया. अन्य स्कूलों में पढ़ाई होती कहां है? रात में उसका बिस्तर जूट का बोरा था और टूटी टपरी के ऊपर खुला आसमान. एक जोड़ जूता प्लास्टिक का था लेकिन जब स्कूल जाता तो जूते हाथ में लेकर ताकि जूते जल्दी नहीं फटें और न गंदे हों. किताबों के लिए एक मैली पतली थैली थी. चूंकि उसके पास स्कूल बैग नहीं था.

नानू कक्षा में सदैव प्रथम आता था. परंतु कभी-कभी ग़रीबी के कारण फ़ीस के लिए परेशान हो जाता. स्कूल में उसके दो घनिष्ठ मित्र बन गये. नानू के दोस्त उसी गांव के अच्छे परिवार के लड़के थे. वे हमेशा नानू की मदद करते थे. इस वर्ष नानू पांचवी परीक्षा में अच्छे नंबरों से पास हुआ था. मेरिट में नाम आने से विद्यालय की ओर से छात्रवृत्ति भी घोषित की गयी. नानू बहुत ख़ुश था. उसके घर वालों ने उसके दोस्तों को खाने पर बुलाया, जो भी भोजन तैयार था उसे प्रेम से परोसा. नानू के दोस्त वालसिंह पारगी और भूरसिंह मुणिया ने खाना खाया और नानू को ढेर सी बधाई देने के साथ दो पैकेट भी दिये. जब दोनों दोस्त चले गये तब नानू ने उन्हें खोलकर देखा. वालसिंह ने कुछ पाठ्यपुस्तकें दी थीं और भूरसिंह ने स्कूल ड्रेस और अगले वर्ष की फ़ीस दी थी, यह सब देखकर नानू की और उसके माता-पिता की आंखों में आंसू आ गये. इसी तरह प्रत्येक वर्ष उसने दोस्तों की मदद से पढ़ाई पूरी की. नानू आज एक अच्छे पद पर नौकरी करता है. कृतज्ञ दिल से दोस्तों को याद करता है. नानू को अपने दोस्तों का ऋण याद है. उसे चुकाने के लिए वह गांव के ग़रीब बच्चों की पढ़ाई में मदद करता है. उसका एक लक्ष्य है कि निरक्षर बच्चों की मदद करके अपने भील अंचल को निरक्षरता की दासता से मुक्त करना. इस मिशन में उसके माता-पिता भी शामिल हैं. नानू के मन में स्नेह-दया-ममता का सागर लहराता है. इसीलिए नानू भूरिया अपने समाज के लिए एक प्रेरक व्यक्तित्व बन गया है.

✍ **३२५, म.गां.मार्ग**
थादला-४५७७७

अमरीका/कैनाडा से सीधा संपर्क

भारतीय समयानुसार, सुबह ७ से १० बजे तक और शाम को ५ से ११ बजे तक अमरीका तथा कैनाडा के लेखक व पाठक, १-८४७-९४४-८८१३ (नेट फ़ोन सुविधा) पर सीधा संपर्क कर सकते हैं. - सं.

गीत

✍ *अल्पना*

अब गूंगे शब्दों की परिभाषा कौन-गढ़े ।
अनदेखी-अनजानी, राहों पर कौन बढ़े ।।
आंगन में धूप उतर, मन को बहलाती है ।
कुम्हलाये सपनों को मानो सहलाती है ।।
असमय ही सावन में डाली से पात झड़े ।
अनदेखी अनजानी राहों पर कौन बढ़े ।।
गंगा की धारा के, साथ-साथ चलना है ।
पथ के अवरोधों से, हर पल संभलना है ।
उत्तर की चाह लिये अनगिन हैं प्रश्न खड़े ।
अनदेखी-अनजानी राहों पर कौन बढ़े ।।
पुलकित है भाव कहीं, चिंतन की घाटी में।
बिखरी है ख़ुशबू सी, अब देखो माटी में ।।
आशा की किरणों से मन चाहे चित्र मढ़े ।
अनदेखी-अनजानी राहों पर कौन बढ़े ।।

✍ **४२१-सी, सिटी मालगोदाम रोड,**
कुंवरपुर, बरेली (उ. प्र.)–२४२००३

आमने-सामने

आम आदमी की यातना ही मेरी कहानियों के धरातल हैं....

✍ सैली बलजीत

बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठ खोलना चाहता है, लेखक और पाठक के बीच की दीवार ख़त्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने-सामने'. अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुन्नी सिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, (स्व.) सुमन सरीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र, अलका अग्रवाल सिगतिया, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन, प्रकाश श्रीवास्तव, सलाम बिन रजाक, मदन मोहन 'उपेंद्र', भोला पंडित 'प्रणयी', महावीर रवांल्टा, गोवर्धन यादव, डॉ. विद्याभूषण, नूर मुहम्मद 'नूर', डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम', सुरेंद्र रघुवंशी, राजेंद्र वर्मा, डॉ. सेराज खान 'बातिश', डॉ. शिव ओम 'अंबर', कृष्ण सुकुमार, सुभाष नीरव, हस्तीमल 'हस्ती', कपिल कुमार, नरेंद्र कौर छाबड़ा, आचार्य ओम प्रकाश मिश्र 'कंचन', कुंवर प्रेमिल, डॉ. दिनेश पाठक 'शशि', डॉ. स्वाति तिवारी, डॉ. किशोर काबरा, मुकेश शर्मा और डॉ. निरुपमा राय से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है सैली बलजीत की आत्मरचना.

मेरे भीतर लेखन के बीज कब फूटे... मैं यह दावे के साथ कहता हूं कि एक लेखक तो जन्मजात लेखक होता है. मुझे बहुत छुटपन वाली बरसातें एकाएक स्मरण हो आयी हैं. मैं तरल हो जाया करता था... बारिश की रिमझिम में भीगना अच्छा लगता था. स्कूल में पढ़ते हुए मुझे एकांत रुचता था. किताबों को सहेजना भी अच्छा लगता था. आस-पड़ोस के घरों की रसोइयों से उठता धुआं मुझे कविताओं के छोटे-छोटे कालखंडों में परिवर्तित हुआ दिखता, आकाश में उड़ती रंगबिरंगी पतंगों में मुझे ख़ूबसूरत प्रतिबिंब दिखते, कांच के पारदर्शी कंचों में मुझे मायावी दुनिया के अनेक तिलिस्मी द्वार खुलते हुए प्रतीत होते, अपने से बड़ी उम्र की लड़कियां जाने क्यों अच्छी लगती थीं... मेरा नाजुक मन सपनों की पिटारी लिये उड़ने लगता था.... यह था मेरा बचपन... उदास रहना भी अच्छा लगता था.

१९४९ में पंजाब के शहर बटाला में मेरा जन्म हुआ था. यह शहर पंजाबी के क़द्दावर कवि शिवकुमार बटालवी की भी जन्मस्थली है. यहीं से मेरी प्राथमिक पढ़ाई शुरू हुई थी. बचपन में भाइयों के संग अनेक स्मृतियां अब भी दिल पर अंकित हैं... रंगबिरंगी पंतंगों को उड़ाने की बजाये उन्हें सहेजना जाने क्यों अच्छा लगता था... उन्हीं दिनों सिनेमा घरों में फ़िल्में देखने का चस्का भी ऐसा लगा कि हर वक़्त दिल पर फ़िल्मों का तिलिस्मी जादू सिर चढ़ कर बोलने लगता था. पिताजी के तबादलों के कारण विभिन्न शहरों में रहने का भी अवसर मिला था. हर शहर किसी कारण मेरी शिराओं में सरसराने लगा था. दीनानगर में आकर लकड़ी के आरों से तराशी गयी लकड़ियों में अजीब से प्रतिबिंब दिखते तो मन और तरल हो उठता. बटाला में लोहे के कारख़ानों में चलती मशीनों के शोर में भी जाने क्या था... मैं ख़ूब देर तक उन्हें देखता रहता... शिव कुमार बटालवी को देखना अच्छा लगता था.

दसवीं तक आते-आते हिंदी शिक्षकों के पढ़ाने के तरीकों ने मुझ बींध लिया था. प्रथम दर्जे में मैट्रिक उत्तीर्ण की तो लगा था कि मैं अब सपनों की पिटारी थामे कोई यायावर हो गया हूं... फिर विद्युत इंजीनियरिंग की पढ़ाई बटाला के ही पॉलीटेक्निक में करते-करते एकाएक गुलशन नंदा, दत्त भारती, गुरुदत्त, शरतचंद्र, गोपालदास 'नीरज', प्रेमचंद्र, अमृता प्रीतम, टैगोर इत्यादि कई नामों से उनकी कृतियों के कारण ही परिचित हुआ था. इंजीनियरिंग की पढ़ाई छूटती हुई प्रतीत हुई थी. फिर पिताजी की डपट ने अपना प्रभाव दिखाया कि मैंने १९६९ में इंजीनियरिंग की पढ़ाई पूरी कर ली थी. यह फिर ज़रूरी भी थी. उन्हीं दिनों बड़े भाई पटियाला में थे, नौकरी के सिलसिले में... और मैंने अभी पढ़ाई पूरी की थी. नौकरी में अभी नहीं आया था. खाली था. इसलिए बड़े भाई बुआदास के पास पटियाला चला गया था. वे दिनभर ऑफ़िस में रहते और मैं रिसालों, अख़बारों की दुनिया में खो जाता. वहां की लायब्रेरी में ही प्रथम बार 'धर्मयुग', 'सारिका', 'कादंबिनी' तथा 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' जैसी पत्रिकाएं देखीं तो गदगद हो उठा था. 'सारिका' के रंगीन पृष्ठों पर छपी कहानियों को पढ़ने लगा था. फिर ऐसा चस्का लगा कि हर माह 'सारिका' और 'कादंबिनी' ख़रीदने का क्रम नियमित हो गया था. 'धर्मयुग' तो मेरे लिए अनिवार्य हो चला था. हर सप्ताह वहां छपने वाली कहानियां मुझे भीतर तक हिलाने लगी थीं. उन्हीं दिनों कितने कथाकारों को 'सारिका' और 'धर्मयुग' के माध्यम से ही जाना था. कितने नाम थे... कमलेश्वर, मन्नू भंडारी, रमेश उपाध्याय, सतीश जमाली, दीप्ति खंडेलवाल, प्रभु जोशी, हृदयेश, मुद्राराक्षस, सुभाष पंत, वल्लभ डोभाल, शानी, कामतानाथ, सुरेश सेठ, दामोदर सदन, सूर्यबाला, चित्रा मुद्गल, मृदुला गर्ग, मृणाल पांडे, छत्रपाल, ओम गोस्वामी, राजेंद्र यादव, धर्मवीर भारती, आशीष सिन्हा, विकेश निझावन, आबिद सुरती, संजीव, मधुकर सिंह, हिमांशु जोशी, मिथिलेश्वर इत्यादि. कमलेश्वर के समय की 'सारिका' के तो आज भी मेरे पास असंख्य अंक हैं. 'समांतर कहानी' का ऐसा दौर था कि मेरे भीतर आम आदमी की यातना के अक्स अंकित होने लगे थे और मैं कहानियां लिखने लगा था.

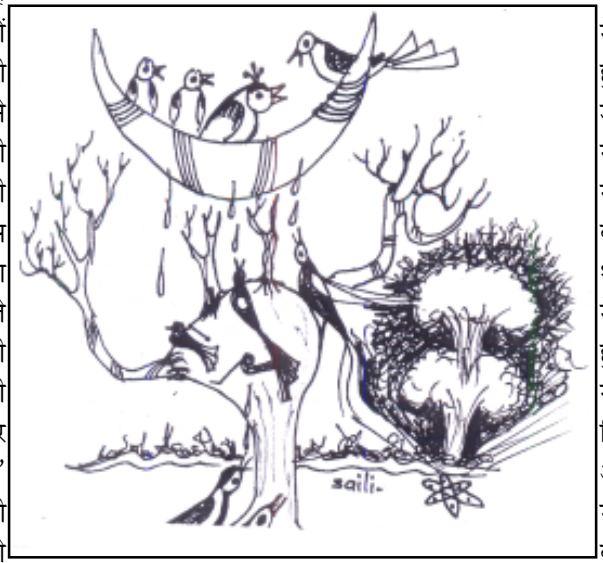

मैंने उसी साल ही लिखना प्रारंभ किया था. १९६९ में ही मेरी कविताएं जालंधर से छपने वाले पत्र 'जनप्रदीप' में प्रकाशित होने लगी थीं. फिर कहानियों का सिलसिला चला. मेरी शुरुआती कहानियां भी इसी पत्र में आयी थीं. फिर जालंधर से प्रकाशित 'पंजाब केसरी,' 'हिंदी मिलाप,' 'वीर प्रताप' में कहानियों का छपना शुरू हुआ था. 'हिंदी मिलाप' में उन दिनों सिमर 'सदोष' साहित्य के पन्ने देखते थे. संपादकीय टिप्पणियों सहित कहानियां छापना उनका जुनून था. उन्हीं दिनों 'हिंदी मिलाप' में अनेक कहानियां प्रकाशित हुई थीं. इस बात का फ़ख्र रहा है कि उन्हीं पन्नों पर उन दिनों रमेश बतरा, धीरेंद्र अस्थाना, सुभाष रस्तोगी, गीता डोगरा, तरसेम गुजराल, कमलेश भारतीय, पृथ्वीराज मोंगा, प्रेम विज, नरेंद्र निर्मोही, संतोष, लक्ष्मी नारायण मधुप इत्यादि दिग्गज कथाकार भी छपते रहे थे. कहानी क्षेत्र में स्थापित होने का श्रेय मैं 'हिंदी मिलाप' और 'पंजाब केसरी' को देता हूं.

फिर... पंजाब से बाहर की पत्रिकाओं में छपने का सिलसिला शुरू हुआ था. उन दिनों लघु पत्रिकाओं का शुरुआती दौर था. मुंबई से प्रकाशित 'कथाबिंब' पत्रिका का नाम भी तभी सुना था. मुझे 'कथाबिंब' के तिलिस्म ने बांध लिया था. मुझे स्मरण है, मेरी एक ग़ज़ल डॉ. अरविंद के संपादन में जब 'कथाबिंब' में आयी थी तो मैं आसमान में उड़नेवाले पांखी की तरह हो गया था. फिर अरविंद जी से नियमित पत्राचार होने लगा था, वे स्पष्टवादी संपादक लगे थे मुझे. उन्हें कहानी भिजवाता तो उनका

स्पष्ट उत्तर आता कि मुझे अभी और परिश्रम करना है. फिर उन्हें दूसरी कहानी भिजवाता. मुझे स्मरण है. लंबी दौड़ के बाद 'कथाबिंब' में मेरी कहानियों का छपना नियमित हो पाया था. चंडीगढ़ से छपने वाला 'दैनिक ट्रिब्यून' का पंजाब में आना सुखद लगा था. राधेश्याम शर्मा और विजय सहगल के संपादन में मेरी अनेक कहानियां वहां प्रकाशित हुई थीं. फिर 'सारिका' में ग़ज़लें आयीं तो अच्छा लगा था.

१९८० तथा १९८७ में मुझे बिहार जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था. रांची, पटना, गया, हज़ारीबाग, मुजफ़्फ़रपुर इत्यादि शहरों में अनेक साहित्यकारों से मिलना हुआ था. जानकी वल्लभ शास्त्री, डॉ. रेवती रमण, विमल विश्वास, चंद्रमोहन प्रधान, भारत यायावर, प्राणेश कुमार, डॉ. राजेंद्र प्रसाद सिंह, नीतीश्वर शर्मा 'नीरज', डॉ. सतीश पुष्करणा, सुरंजन इत्यादि साहित्यकारों का सान्निध्य आज भी मेरे लिए अमूल्य है. बिहार के साहित्यकारों से मेरा आज भी पत्राचार है. वहां की तत्कालीन लघुपत्रिकाओं के अंक आज मेरे पास सुरक्षित हैं. 'नवतारा', 'शांख', 'प्रणेता परिवेश', 'ऋतुगंध' में छपी मेरी कहानियां/लघुकथाएं मेरे लिए किसी धरातल से कम नहीं हैं.

मैं लगभग कथाकार होता चला गया था. कविताओं का सिलसिला थम गया था. बटाला में नौकरी के दिनों लेखन जारी रहा था, विद्युत इंजीनियरिंग से संबद्ध बड़े बिजली घरों में मेरी तैनाती रही थी. 'कंट्रोल रूम' में बैठनेवाली नौकरी होने के कारण ही मेरा लेखन नियमित होने लगा था. ड्यूटी पर जाते समय साथ लिये काग़जों का पुलिंदा, ड्यूटी ख़त्म होने तक कहानियों में ढ़लने लगा था. बिजली विभाग में छोटी पोस्टों पर कार्यरत कर्मचारियों की निजी तकलीफ़ें मेरी कहानियों के धरातल बनने लगी थीं. उन्हीं दिनों कृष्णा सोबती, फणीश्वरनाथ रेणु, कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, भीष्ण साहनी, धर्मवीर भारती, मन्नू भंडारी, चित्रा मुद्गल, राही मासूम रजा, राजेंद्र अवस्थी, विष्णु प्रभाकर, सतीश जमाली, से. रा. यात्री, केशव इत्यादि की कहानियां और उपन्यास पढ़ने का सुअवसर मिला.

मेरी शादी के सात साल बाद पंजाब के हालातों में काला दौर आया था. १९८४ में पूरा पंजाब आतंकवाद की गिरफ़्त में आ गया था. लोग घरों में दुबके रहने को अभिशप्त हो गये थे. बटाला में हालात बदतर होने के कारण मैंने अपना ट्रांस्फर पठानकोट में करवा लिया था. यहां मेरी ससुराल भी है. मैं अपना सामान उठाये, ढांगू रोड वाले सरकारी क्वार्टर में पत्नी कृष्णा तथा बच्चे शैलजा व अमितेश्वर के संग आ गया था.

ज़िंदगी के गुलमोहर महक उठे थे. पठानकोट में आकर मेरी कहानियों के धरातल और पुख़्ता होने लगे थे. इसी साल दिसंबर में दिल्ली जाना हुआ था. सुरंजन की किताब का विमोचन बड़े लेखकों से मिलने का बहाना हो गया था. तभी राजेंद्र अवस्थी, हिमांशु जोशी, अमृता प्रीतम, डॉ. जगदीश चंद्रीकेश, रामकुमार भ्रमर से भेंट करने का सौभाग्य मिला था. दिल्ली मेरे सपनों का शहर रहा है. वहां की पत्रिकाओं का तिलिस्म, वहां के प्रकाशकों के बड़े-बड़े शो–रूम.... वहां के लेखक... वहां की ऐतिहासिक इमारतें. वहां के रौनक भरे बाज़ार. लेकिन इस बार मेरा प्रथम सपना साकार होने की प्रक्रिया में दिखा था, मैं उल्लसित हो उठा था. मेरे प्रथम कहानी संग्रह 'अपनी-अपनी दिशाएं' की पांडुलिपि भाई मिश्रा जी के सदप्रयासों से प्रवीण प्रकाशन ने रख ली थी... और १९८५ में मेरी पहली किताब आयी तो मैं आकाश में उड़नेवाले किसी पांखी की तरह हो गया था. क़िताब आना, हर लेखक का सपना होता है.

उससे अगले साल पंजाब हिंदी साहित्य अकादमी द्वारा आयोजित राष्ट्रपति भवन नयी दिल्ली में सम्मान समारोह में पंजाब के वरिष्ठ साहित्यकारों में मेरा नाम भी था. तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जेलसिंह के हाथों सम्मान प्राप्त कर मैं धन्य हो उठा था. यह क्षण मेरी ज़िंदगी का सुनहरा क्षण था. फिर किताबों के प्रकाशन का सिलसिला चल निकला था, दूसरा कहानी संग्रह 'गीली मिट्टी के खिलौने' भाषा विभाग पंजाब के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित हुआ था. कथाजगत में मेरी पहचान होना सुखद लगा था. फिर 'वर्तमान साहित्य' की कृष्ण प्रताप स्मृति कहानी प्रतियोगिता (१९८८-८९) में कहानी 'ग़लत होते हुए समीकरण' को सांत्वना पुरस्कार मिलना मुझे भीतर तक हिलोर गया था. 'कादंबिनी' की अखिल भारतीय कहानी प्रतियोगिता (१९९०) में भी मेरी कहानी 'दूसरे घरौंदे तक' को सांत्वना पुरस्कार मिलना गौरवमय लगा था. लगा था कहानी क्षेत्र में मेरा परिश्रम रंग ला रहा है. इससे पूर्व १९८७ में दिल्ली से

प्रकाशित पत्रिका 'गंगा' के संपादक कमलेश्वर के नाम प्रेषित कहानी 'शोर के जंगल में' स्वीकृत हो गयी थी. दिल्ली में उन्हीं के दफ़्तर में हुई भेंट कमलेश्वर के कई पहलू खोल गयी थी. वे मुझे आत्मीय अनुज मानने लगे थे. उनसे पत्राचार मेरी ज़िंदगी की अमूल्य धरोहर है. उनके पत्र आज भी मेरी फ़ाइलों का सरमाया है. 'गंगा' में मेरी प्रकाशित कहानी का नाम श्रद्धेय कमलेश्वर ने बदल कर शीर्षक 'जीवन चलने का नाम' कर दिया था. उनसे हुई भेंट आज भी अविस्मरणीय है. १९९३ में मेरा उनसे जमकर पत्राचार हुआ था. कारण था, मेरे कहानी संग्रह 'अब वहां सन्नाटा उगता है' की भूमिका लिखने के संबंध में होनेवाली प्रक्रियाएं. कमलेश्वर ने मेरी किताब की भूमिका लिखने के अतिरिक्त मेरे लिए अपने प्रकाशक (पुस्तकायन, नयी दिल्ली) से मेरी किताब को छापने की बात भी करवा दी थी. इसके प्रमाण स्वरूप प्रकाशक से हुए अनुबंध में साक्षी के रूप में कमलेश्वर जी के हस्ताक्षर हैं. यह मेरे लिए अमूल्य निधि से कम नहीं. उसके बाद उनके देहावसान तक उनसे फ़ोन-वार्ताएं तथा पत्राचार होता रहा था. कमलेश्वर जी ने अपनी मृत्यु से पूर्व मुझसे 'साहित्य अकादमी' दिल्ली से प्रकाश्य 'हिंदी की कालजयी कहानियां' हेतु मेरी कहानियां भी चयन हेतु मंगवायी थीं, और उनकी मृत्यु के बाद भारतीय साहित्य अकादमी इसे विधिवत छापने की प्रक्रिया में है. कमलेश्वर के संपादन में हिंदी की कालजयी कहानियां (पांच खंड) में मेरी भी एक कहानी का सम्मिलित होना मेरे लिए सबसे बड़ा पुरस्कार है.

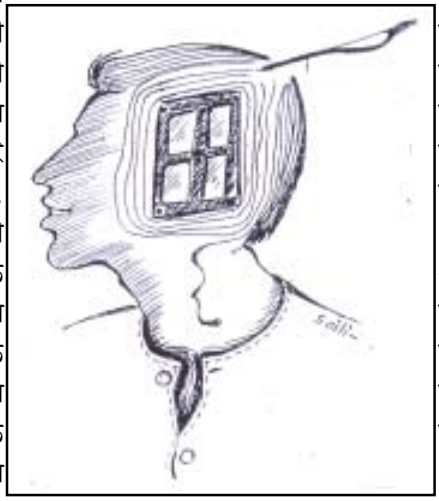

दिल्ली की पत्रिकाओं—'गंगा', 'कादंबिनी', 'सा. हिंदुस्तान', 'हंस', 'संचेतना', 'पश्यंती', 'व्यंग्य-यात्रा' के अतिरिक्त देश भर की पत्रिकाओं में छपना भी कम महत्वपूर्ण नहीं मेरे लिए, जिनमें 'प्रेरणा', 'कथाबिंब', 'कथाक्रम', 'वर्तमान साहित्य', 'परती पलार', 'शिखर वार्ता', 'नूतन सवेरा', 'हिमप्रस्थ', 'उत्तर-प्रदेश', 'सेतु', 'प्राची', 'कथादर्शन', 'नई कहानी', 'शीराज़ा', 'मनस्वी', 'कल के लिए', 'समर लोक' इत्यादि में छपना भी मेरे लिए उतना ही सम्मानजनक है. राजेंद्र यादव, डॉ. महीप सिंह, विकेश निझावन, पद्मा सचदेव, नासिरा शर्मा, से. रा. यात्री, कमलेश्वर, डॉ. अरविंद, एस. आर. हरनोट, मोहन सपरा, कुमार विकल, सुरेश सेठ, सतीश जमाली, डॉ. नरेंद्र मोहन, गोपालदास 'नीरज', डॉ. सुशील कुमार, डॉ. ओम अवस्थी, उमा शंकर तिवारी, राजेंद्र परदेसी, खुदेजा खान इत्यादि साहित्यकारों का सान्निध्य मेरी ज़िंदगी की जमा पूंजी है.

दिल्ली जाना होता है तो डॉ. नरेंद्र मोहन, राजेंद्र यादव, डॉ. महीप सिंह, डॉ. प्रेम जनमेजय से मिले बग़ैर आने को मन नहीं करता. लेकिन कभी कभार ऐसा हो पाना संभव नहीं होता. राजेंद्र यादव आज भी मुझसे स्नेह करते हैं, मेरी कहानियां पढ़ते हैं. छापते हैं. डॉ. महीप सिंह, मेरी कहानियां 'संचेतना' में नियमित दे रहे हैं. डॉ. अरविंद मेरी हर कहानी को 'कथाबिंब' में उचित महत्त्व के साथ छापते हैं. शैलेंद्र सागर 'कथाक्रम' में मेरी कहानियां प्रकाशित करते हैं, मेरा उत्साह दुगुना हो जाता है. इसके अतिरिक्त पटना से भाई तारिक असलम 'तस्नीम' का सहयोग भी नियमित मिल रहा है. चंडीगढ़ में भाई डॉ. सुभाष रस्तोगी से तो अंतरंग मित्रता है. हमारे बीच कभी कोई बात रहस्यमयी नहीं रही. हम एक दूसरे के लिए खुली किताब की तरह हैं. देशभर के साहित्यकारों से मेरी अंतरंगता है. जब भी समय मिलता है मथुरा, दिल्ली, लखनऊ, झांसी, वाराणसी, रांची, मुंबई, मुजफ़्फ़रपुर, गया, कलकत्ता, जम्मू, शिमला, कांगड़ा, पालमपुर, मंडी, धर्मशाला, चंडीगढ़, अंबाला, अमृतसर, जालंधर, लुधियाना मेरी यात्राओं के पड़ाव रहे हैं. हर यात्रा में कोई मक़सद ही रहा है... देशभर के लेखकों से मिलने को मैं लालायित रहता हूं.

आज लगभग २५० कहानियां हो गयी हैं. मेरी लगभग हर कहानी आम आदमी की त्रासद ज़िंदगी का कोई आईना होती है. मेरी कृतियों में भी बढ़ोत्तरी हो रही है. मुझे इस बात का फ़ख़्र है कि मेरी समस्त किताबें दिल्ली के ही प्रतिष्ठित प्रकाशकों ने ससम्मान प्रकाशित

की हैं, जिनमें मेरे बारह कहानी संग्रह, एक उपन्यास, एक कविता संग्रह, एक लघुकथा संग्रह, एक संस्मरणों की किताब, तीन संपादित कहानी संग्रह सम्मिलित हैं. मेरा नाम मुख्यत: एक कहानीकार के रूप में ही प्रचलित है, इससे मैं स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करता हूं.

मेरे लेखन पर परोक्ष रुप से मेरे पिताजी का प्रभाव रहा है. मेरे पिता मेरी हर कृति पर एक सौ का ईनाम देना कभी नहीं भूलते थे. पिताश्री के अतिरिक्त मेरे भाइयों बलविंद्र, देवेंद्र, अश्विनी तथा बुआदास का भी मेरे लेखन में अभूतपूर्व सहयोग रहा है. वे मुझे हर क्षण प्रोत्साहित करने वाले शख़्स हैं. बलविंद्र भाई तो अपने रेखांकनों के माध्यम से भी झंडे गाड़ रहे हैं. मेरी कहानियों के साथ वह रेखांकन भिजवाना कभी नहीं भूलते. अश्विनी अमेरिका में रहता है, सपरिवार.... और वहीं से मुझे 'पुश' करना नहीं भूलता. मेरे परिवार में अक्सर साहित्य पर चर्चाएं होती हैं. मेरी बिटिया शैलजा कॉलेज में हिंदी साहित्य पढ़ाती है... और हिंदी साहित्य में पीएच. डी. है. इसके अतिरिक्त बेटा अमितेश्वर मेरे साहित्य का रसिया है.

मैं लगभग अट्ठाइस सालों से पठानकोट में ही हूं. जब दिल करता है, धर्मशाला, डलहौजी, पालमपुर, कांगड़ा चला जाता हूं. पहाड़ मेरी कमज़ोरी है और मैं पहाड़ों की गोद में बसे शहर पठानकोट में रहता हूं. मैं इसे सतीश जमाली का शहर भी कहता हूं. वे जब भी इलाहाबाद से अपने शहर पठानकोट में आते हैं मुझसे मिलना नहीं भूलते. पठानकोट में आकर मेरे भीतर का कथाकार थोड़ा आकार लेने लगा था. यानी मेरी साहित्य यात्रा का विकास इसी शहर से हुआ था. यहीं मैंने दफ़्तर तंत्र को उकेरती हुई कहानियों तथा अपने उपन्यास 'मकड़जाल' की रचना की है. यहीं रहते हुए मेरी कहानियां देश की शीर्षस्थ पत्रिकाओं में आयी हैं. यही रहते हुए मेरी क़िताबें प्रकाशित हुई हैं, सम्मान प्राप्त हुए हैं. मुझे इस बात का भी गौरव है कि मैंने अपनी नौकरी के दौरान हिमाचल प्रदेश के शहर कांगड़ा में भी थोड़ा समय बिताया है. पहाड़ों की गोद में बसा यह शहर आज भी मेरी शिराओं में दौड़ता है. अंग्रेज़ों के ज़माने का विशाल बंगला मेरा आवास रहा है. वहीं तो मैंने कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, विष्णु प्रभाकर, नीरज, सुदर्शन फ़ाकिर, अमृता प्रीतम, महीप सिंह, रमेश बत्तरा, चित्रा मुद्गल, पद्मा सचदेव, सुशील कुमार, कुमार विकल, शिवकुमार बटालवी, बलविंद्र सैली, सुखवंत, भागसिंह, उमाशंकर तिवारी, गीता डोगरा, सुरेश सेठ, मोहन सपरा इत्यादि रचनाकर्मियों पर संस्मरण लिखे थे. उस विशाल बंगले की दीवारें मेरे लेखन की मूक साक्षी हैं. क्या-क्या स्मरण करूं? ज़िंदगी में अनेक स्मृतियां बिखरी पड़ी हैं.

पठानकोट में रहते हुए मैं जूनियर इंजीनियर से एस. डी. ओ के पद पर पहुंचा था. मैंने अफ़सरी भी देखी है. लेकिन मेरे भीतर का कथाकार कभी सोया नहीं है. मेरे भीतर के कथाकार को चुप बैठना गंवारा नहीं. नंगी आंखों से ज़िंदगी के वीभत्स यथार्थ से भिड़ने से उसने कभी आंख नहीं चुरायी. मेरी कृतियों पर विश्वविद्यालयों में शोधकार्य भी हुए हैं. विश्वविद्यालयों के शोधार्थी मेरी कहानियां पढ़ रहे हैं. यह मेरे लिए किसी सम्मान से कम है क्या? और मैं आम आदमी की यातना को कहानियों के ख़ांचों में ढाल रहा हूं.

मैं चौबीसों घंटे कथाकार रहता हूं. रात को सोते हुए भी किसी कहानी का कोई पात्र मुझसे बतियाता रहता है. कहानियों के अतिरिक्त संगीत का रसिया हूं. पुरानी फ़िल्मों के गीत मेरे लिए सुकून के द्वार खोलते हैं. रफ़ी साहब, लता, तलत, आशा भोंसले, मन्नाडे के अतिरिक्त जगजीत सिंह, चित्रासिंह, मेंहदी हसन और गुलाम अली की ग़ज़लें भी सुकून देती हैं. आकाशवाणी का 'तामील-ए-इरशाद' प्रोग्राम सुनकर सोना आज भी नियमित जारी है. संगीत मेरी शिराओं में सरसराता है.

आज भी श्रेष्ठ पत्रिकाएं ख़रीद कर पढ़ता हूं. अपनी ख़रीदी हुई किताबों की लायब्रेरी है. देश के किसी भी कथाकार की श्रेष्ठ कृति पढ़ ही लेता हूं. मुझे साहित्यिक ख़बरों की भी ललक रहती हैं. देश में कौन क्या पढ़–लिख रहा है. नयी कृतियों का परिचय पाना अच्छा लगता है. मुझे अभी श्रेष्ठ रचना का सृजन करना है. जितना लिखा है, उससे संतुष्ट हूं. कभी-कभार लगता है जब तक ज़िंदगी है और काम कर लूं. बढ़िया कहानी लिखने में विश्वास रखता हूं. फिर रचनाकार थकता कहां है? उसे तो चलते रहना होता है ना?

१२८८, लेन-४,
श्रीराम शरणम कॉलोनी,
डलहौज़ी रोड,
पठानकोट (पंजाब)-१४५००१

सागर-सीपी

"भाषा के संबंध में हिंदी के ग़ज़लकारों को गंभीरता से अध्ययन करना चाहिए."

(हिंदी जगत के श्रेष्ठतम गीतकार, पद्मश्री गोपालदास 'नीरज' से कवि अशोक 'अंजुम' की ग़ज़ल पर केंद्रित 'कथाबिंब' के लिए विशेष बातचीत.)

डॉ. गोपाल दास ' नीरज'

जनकपुरी, मैरिस रोड,
अलीगढ़-३२०२१०१

अशोक अंजुम
६१५ ट्रक गेट,
कासिमपुर (पॉ. हा.)
अलीगढ़-२०२१२७
फ़ो : ९२५८७७९७४४

◆ ग़ज़ल को किस प्रकार परिभाषित करेंगे? इसके प्राणतत्त्व के विषय में भी बताइए?

ग़ज़ल उर्दू काव्य की श्रेष्ठतम लोकप्रिय विधा है, लेकिन कविता से अधिक यह एक तहजीब है. ग़ज़ल की जो सदियों पुरानी परिभाषा है वह है — ''बदनान गुफ़्तगू कर्दन'', अर्थात ग़ज़ल महबूब से बात करने की कला है. इस परिभाषा में ग़ज़ल के समस्त तत्व विद्यमान हैं. महबूब अर्थात प्रेमिका से जो बातचीत की जाती है वह बात प्रेम की होती है. प्रेम का मतलब है 'रस'; यानि 'रस' ग़ज़ल का मुख्य तत्व है. दूसरा तत्व, प्रेमिका से बात बड़ी विनम्रता व शालीनता से की जाती है. हाथ में डंडा लेकर नहीं. इसलिए तहज़ीब, शालीनता, शिष्टता ग़ज़ल के दूसरे तत्व हैं. तीसरे, प्रेम की बात होठों से कम आंखों से ज़्यादा होती है. इसका मतलब है कि ग़ज़ल संकेतों और इशारों की कविता है. चौथी बात यह है कि प्रेम की बात करते समय कहने वाले के मन की बात ज़रूर शामिल होती है, इसलिए वैयक्तिकता यानि पर्सनल एलीमेंट भी ग़ज़ल का एक तत्व है. पांचवां तत्व है— सूक्ष्मता, संक्षिप्तता, क्योंकि प्रेम की बात संकेत में ही की जाती है, वहां भाषणबाजी, उपदेश जैसी चीज़ नहीं होती. इसके अतिरिक्त ग़ज़ल की और कई परिभाषाएं हैं, मेरी अपनी जो परिभाषा है वो ग़ज़ल शब्द को लेकर बनायी गयी है. ग़ज़ल शब्द का अर्थ ग़ज़ाला से है. फारसी में 'ग़ज़ाला' का मतलब हिरन से है. पुराने ज़माने में हिरन को पकड़ने के लिए एक वाद्ययंत्र का प्रयोग किया जाता था. बहेलिया जब हिरन के पीछे दौड़ता था तो उस वाद्ययंत्र को बजाना शुरू करता था. उस वाद्ययंत्र के स्वर से मोहित होकर हिरन दौड़ना भूल जाता था और खड़ा हो जाता था. इस अवस्था में बहेलिया उसको तीर मारता है, इस तीर से घायल होकर संगीत की मुग्धावस्था में हिरन के हृदय से जो चीख निकलती है, मैं उसे ग़ज़ल का प्राणतत्व मानता हूं. वैयक्तिक पीड़ा, वैयक्तिक दर्द जो संगीतात्मक हो और जिसमें सारे वातावरण को गुंजित करने की शक्ति हो वह ग़ज़ल है. ग़ज़ल में वैयक्तिक पीर सार्वभौम पीड़ा में परिवर्तित हो जाती है. इस बात को श्री कृष्ण बिहारी 'नूर' ने इस शेर में कहा है—

मैं तो ग़ज़ल सुनाके अकेला खड़ा रहा,
सब अपने-अपने चाहने वालों में खो गये ।

◆ आपने ग़ज़ल कहना कब से प्रारंभ किया? आपकी ग़ज़लगोई के प्रेरणास्त्रोत कौन रहे?

१९४४-४५ से जब 'रंग' जी की ग़ज़लें सुना करता था तब ही से प्रारंभ कर दिया था. मेरी वो ग़ज़लें मेरे पुराने किसी संग्रह में सम्मिलित हैं. उस समय की ग़ज़लों का एक शेर मुझे याद आ रहा है —

वहीं है मरकजे-काबा, वहीं है राहे-बुतख़ाना,
जहां दीवाने दो मिलकर सनम की बात करते हैं।

◆ हिंदी और उर्दू ग़ज़ल में क्या कोई मूलभूत अंतर है? और यदि है तो हिंदी ग़ज़ल, उर्दू ग़ज़ल से किस प्रकार अलग है?

वैसे तो हिंदी ग़ज़ल और उर्दू ग़ज़ल की भाषा और व्याकरण में केवल समास पदों को छोड़कर और कोई विशेष भेद नहीं है, लेकिन हिंदी ग़ज़ल मैं उसे कहना चाहूंगा जिसमें कि भारत की आत्मा अभिव्यक्त हुई हो. भारत की आत्मा केवल हिंदी और उर्दू की मुहावरेदार भाषा नहीं है. मैं बुद्ध, महावीर, गीता, उपनिषद, वैष्णवदर्शन का चिंतन और यहां के खेतों, खलिहानों, पनघटों की सुगंध और सरसता जिन ग़ज़लों में विद्यमान हैं मैं उन्हें ही हिंदी ग़ज़ल कहना चाहूंगा. इसी के साथ चूंकि हिंदी में ग़ज़ल अधिकांश गीतकारों के द्वारा ही अपनायी गयी है इसलिए यदि गीतों के मात्रिक छंद को ग़ज़ल में प्रयोग करते समय यदि गीतकार स्वराघात में कहीं परिवर्तन करता है तो उसे भी में हिंदी की ग़ज़ल या गीतिका कहूंगा. भले ही उसमें उर्दू ग़ज़ल की तख़्ती फाइलातून, फाइलून, फैलुन आदि नहीं अपनायी गयी हो. जब उर्दू वाले प्रसाद को परसाद लिखते हैं, चंद्र को चंदर कहते हैं, प्रकृति को 'पिराकित' कहते हैं और 'गंगा की धारा' को 'गंगा का धारा' कहते हैं तब उनके उस उच्चारण पर कोई उंगली नहीं उठाता है. फिर हिंदी के गीतकार अगर ग़ज़ल के स्वराघात में कहीं परिवर्तन करते हैं और वह भी ग़ज़ल में अधिक संगीतात्मकता के लिए, तो इसे ग़ज़ल न कहकर के उर्दूवालों को स्वीकार करना चाहिए.

◆ कहा जाता है कि हिंदी में ग़ज़ल दुष्यंत कुमार से आगे नहीं बढ़ पायी है, आप इस विषय में क्या सोचते हैं?

ये कथन ग़लत है कि ग़ज़ल दुष्यंत से आगे नहीं बढ़ी है. दुष्यंत किसी एक ख़ास विचारधारा से प्रतिबद्ध थे और उन्होंने अपनी अधिकांश ग़ज़लों में उसी विचारधारा को ग़ज़ल के रंग में रंगकर प्रस्तुत किया. लेकिन ग़ज़ल क्या एक विचारधारा से प्रतिबद्ध होकर समाप्त हो जाती है. मैं तो समस्त अस्तित्व को कविता का विषय मानता हूं. एक विचारधारा से प्रतिबद्ध होकर कविता बहुत सीमित हो जाती है. आज प्रेम और सौंदर्य की ही बात नहीं, उसके अभिव्यक्ति के क्षेत्र में समाज, राजनीति, दर्शन, अध्यात्म, सूफ़ीयानापन, राष्ट्रीयता आदि सभी कुछ उसके विषय हैं और आज की ग़ज़ल दुष्यंत कुमार की ग़ज़ल से बहुत आगे निकल चुकी है. फिर दुष्यंत कुमार से पहले भी श्री हृदयेश जी, श्री शंभुनाथ 'शेष', श्री बलवीर सिंह 'रंग' आदि ने बहुत अच्छी ग़ज़लें कही थीं. हिंदी में क्योंकि आलोचना के क्षेत्र में भी पक्षधरता चल रही है इसलिए आलोचकों ने जिन नामों का मैंने उल्लेख किया है उनकी कहीं चर्चा नहीं की है. ये सही है कि दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों की लोकप्रियता देखकर हिंदी के गीतकार ग़ज़ल-लेखन की ओर आकृष्ट हुए लेकिन ग़ज़ल दुष्यंत कुमार से आगे नहीं बढ़ी है, कहना ग़लत है.

◆ प्रायः हिंदी ग़ज़ल पर सपाटबायनी, एकरसता, नारेबाजी तथा कथ्य की पुनरावृत्ति का आरोप क्यों लगता है?

यह कथन आंशिक रूप से ही सत्य है. ऐसा वो ग़ज़लकार कहते हैं, जिनमें ग़ज़ल लिखने की पूरी क्षमता नहीं है. हिंदी के बहुत से ऐसे रचनाकार हैं जिन्होंने बहुत ही श्रेष्ठ ग़ज़लें कही हैं.

◆ क्या आप हिंदी में ग़ज़ल की वर्तमान स्थिति से संतुष्ट हैं?

मैं पूरी तरह संतुष्ट हूं. सिर्फ़ इतना कहना चाहूंगा कि अभी ग़ज़ल की भाषा के संबंध में हिंदी के रचनाकारों को गंभीरता से अध्ययन करना चाहिए. उर्दू में ग़ज़ल की परंपरा सात सौ वर्ष पुरानी है और इसके शायरों ने इन पूरे सात सौ वर्षों में ग़ज़ल की भाषा का ही बड़ी बारीकी से अध्ययन किया है और हिंदी में ग़ज़ल की ओर कवि अभी बीस-पच्चीस वर्षों से ही उन्मुख हुए हैं इसलिए भाषा-नैपुण्य अभी भी हिंदी रचनाकारों के लिए अध्ययन की चीज़ बना हुआ है.

◆ उर्दू के शायरों के तमाम शेर प्रचलित हैं, हिंदी में यह स्थिति क्यों नहीं है?

यह तो सही है कि हिंदी में सभी ग़ज़लकारों के शेर उर्दू के ग़ज़लकारों की तरह प्रचलित नहीं हैं, फिर भी कुछ

कवि हैं, जिनके शेर बहुत दूर-दूर तक पहुंचते हैं, जैसे मेरा यह शेर—

अबके सावन में शरारत ये मेरे साथ हुई,
मेरा घर छोड़के कुल शहर में बरसात हुई ।

एक शेर और देखें—

इतने बदनाम हुए हम तो इस ज़माने में,
तुमको लग जायेंगी सदियां हमें भुलाने में ।

राजेश रेड्डी का एक चर्चित शेर है—

मेरे दिल के किसी कोने में इक मासूम सा बच्चा,
बड़ों की देखकर दुनिया बड़ा होने से डरता है ।

सूर्यभानु गुप्त के इस शेर की भी काफ़ी चर्चा है—

कभी आंसू कभी अशआर में ढलकर आयी,
कल तेरी याद कई भेष बदलकर आयी ।

राजगोपाल सिंह का यह शेर भी चर्चित है कि —

उगते सूरज को लोग जल देंगे,
जब ढलेगा तो मुड़के चल देंगे ।

और ख़ुद तुम्हारा ये शेर—

जब से डाली कटी नीम की आना-जाना भूल गयी,
सदमा खाकर इक दीवानी बुलबुल गाना भूल गयी ।

और भी बहुत से हिंदी के शेर हैं, लेकिन दुर्भाग्य यह है कि जिस प्रकार से हिंदी वाले उर्दू ग़ज़लों के शेर दोहराते हैं उस प्रकार से उर्दू भाषा–भाषी हिंदी के शेर नहीं गुनगुनाते. देश में जो ग़ज़ल गायक हैं वे यह मानकर चल रहे हैं कि सिर्फ़ ग़ज़ल के लिए उर्दू के शायर ही उपयुक्त हैं, हिंदी के नहीं. वे उर्दू के शायरों के पास ही जाते हैं.

◆ लोकप्रियता की दृष्टि से क्या गीत और ग़ज़ल को एक ही धरातल पर रखा जा सकता है? साथ ही क्या ग़ज़ल के शेरों को हम दोहे के समकक्ष रख सकते हैं?

गीत और ग़ज़ल समान कोटि में नहीं रखे जा सकते. ग़ज़ल जितनी लोकप्रिय है उससे कम लोकप्रिय हिंदी का गीत भी नहीं है. ये ज़रूर है कि वो कोठे और मज़ारों पर नहीं गाया जाता. फ़िल्म के माध्यम से भी हिंदी के गीत जितने लोकप्रिय हुए हैं उतनी उर्दू ग़ज़ल नहीं. आज पचास साल के बाद भी प्रदीप के राष्ट्रीय चेतना के गीत बिल्कुल तरोताज़ा हैं. गीत की विधा, ग़ज़ल की विधा से कहीं कठिन विधा है. गीत में तो एक ही अनुभूति को उसके पूरे तारतम्य के साथ भिन्न-भिन्न आयामों से युक्त करके अंत में अनुभूति के चरम बिंदु तक लाया जाता है. इसके विपरीत ग़ज़ल में एक शेर का संबंध दूसरे शेर से कोई नहीं होता. ये दो-दो पंक्तियों की विधा है और इसकी समकक्षता में हम दोहों को रख सकते हैं. जिस प्रकार एक शेर में गागर में सागर भरने की कला होती हैं उस प्रकार दोहे में भी यह कला विद्यमान है. रसखान और बिहारी के दोहों के साथ-साथ कबीर, रहीम, तुलसी, जायसी, भारतेंदु हरिश्चंद्र आदि के दोहे बड़ी आसानी से ग़ज़ल के श्रेष्ठतम शेरों के साथ रखे जा सकते हैं. तुलना की जाये तो दोहे ग़ज़ल के शेरों पर शायद भारी ही पड़ें. रसखान का एक दोहा है, नेत्रों पर इससे अधिक श्रेष्ठ पूरे ग़ज़ल साहित्य में कोई शेर नहीं मिलेगा—

अमिय हलाहल मदभरे, श्वेत श्याम रतनार,
जीयत मरत, झुकि झुकि परे, जेहि चितवत इक बार ।

इसी प्रकार तुलसी की एक अर्द्धाली की टक्कर में सौंदर्य-वर्णन विषयक शायद ही कोई शेर हो —

'गिरा अनयन, नयन बिनु बानी.'

तुलसी की आत्मा में सीता, माता के समान प्रतिष्ठित है और पुत्र द्वारा अपनी मां का सौंदर्य-वर्णन भारतीय संस्कृति में अपराध है. इसीलिए सीता का सौंदर्य वर्णन तो उन्होंने नहीं किया और यह कहकर अपना रास्ता निकाला कि सीताजी के सौंदर्य का वर्णन नहीं किया जा सकता क्योंकि नैन, जो उनके सौंदर्य का वर्णन करते हैं, उनके पास वाणी नहीं है, और होंठ जिनके पास उनके सौंदर्य का वर्णन करने की क्षमता है, उनके पास दृष्टि नहीं है. मैंने इस विषय को इस प्रकार से व्यक्त करने का प्रयास किया है—

बयान हुश्न का उनके हो किस तरह नीरज,
जुबां के आंख नहीं, आंख के जुबान नहीं ।

◆ अपने पसंदीदा कुछ हिंदी ग़ज़लकारों के नाम बताइए?

यूं तो बहुत समृद्ध सूची हिंदी ग़ज़लकारों की है तथा सूर्यभानु गुप्त, राजेश रेड्डी, कुंअर बेचैन, रोहिताश्व अस्थाना, उदय प्रताप, राजगोपाल सिंह, अशोक अंजुम, पवन दीक्षित, ओंकार गुलशन, प्रमोद तिवारी, राजेंद्र तिवारी, उर्मिलेश, चंद्रसेन विराट, बालस्वरूप राही, शेरजंग गर्ग, सुरेंद्र चतुर्वेदी, जहीर कुरेशी, अरुण साहिबाबादी आदि की ग़ज़लें मुझे पसंद हैं. ❖❖❖

बाइस्कोप

रंगमंच और फ़िल्मों का सशक्त लेखक, अभिनेता और निर्देशक : गिरीश कर्नाड

(साहित्य और फ़िल्म का चोली दामन का साथ है. हमारे विशेष अनुरोध पर जानी मानी फ़िल्म, टी.वी., मंच कलाकारा व पत्रकार सुश्री सविता बजाज 'कथाबिंब' के लिए चलचित्र जगत से संबद्ध साहित्यकारों के साथ बिताये क्षणों को संस्मरण के रूप में प्रस्तुत कर रही हैं.
अगले अंकों में पढ़िए नक़्श लायलपुरी, चाचा चौधरी, जलीस शरवानी आदि के बारे में.)

✍ *सविता बजाज*

पो. बॉक्स- १९७४३,
जयराज नगर,
बोरिवली (प.),
मुंबई- ४०००९१
फ़ोन : ९२२३२०६३५६

मेरे पाठक मित्रों, जब पुरानी यादों के टुकड़े हो जाते हैं तो उन्हें कभी-कभी इकट्ठा कर जोड़ना बहुत कठिन होता है. मैं अपनी प्रौढ़ अवस्था में कुछ ऐसा ही कर रही हूं. कई यादों को तो जंग लग गयी लेकिन मैं उस गुदड़ी के लाल को भी पूरा प्रयत्न कर साफ़ करने की कोशिश कर रही हूं और चाहती हूं पुरानी अनमोल यादें जो किसी पारस पत्थर से भी महंगी हैं, उनकी मिठास मेरे चाहने वालों तक पहुंचे.

मैं शायद उस गुज़रे ज़माने की यादों की बात कर रही हूं जब विदेश जाना, वहां से पढ़ाई कर हिंदोस्तां वापस लौटना, पायलट बनना और फिर रंगमंच के लिए ड्रामें लिखना बहुत बड़ी बात थी. हिंदी वाले तो हमेशा कहते रहते हैं हम विदेशी ड्रामें इसलिए करते हैं क्योंकि ओरिजनल हिंदी ड्रामों की कमी होती है. मेरे लिए तो यह भी बहुत बड़ी बात थी कि स्व. राजीव गांधी एयर इंडिया में पायलट था, ड्रामे देखता था और जब भी सीताराम बाज़ार (पुरानी दिल्ली) में अपने ननिहाल आता, मेरे भाई धर्मपाल जो इंजीनियर था और फुटबाल का कैप्टन और रैफरी, मिलने ज़रूर आता और हमारे फ्रिज के दो तीन कोकाकोला ज़रूर पीता. मेरे साथ राजीव नाटकों की बातें ख़ूब करता था. राजीव अपनी मां इंदिरा जी और भाई संजय के साथ एन. एस. डी. के ख़ूब सारे नाटक देखता तो मुझे बहुत अच्छा लगता था.

उन्हीं दिनों एन. एस. डी. में एक लंबा, तगड़ा, सुंदर सांवला, सलोना, मोटे-मोटे होंठ वाला एक नौजवान लंदन से आया था. दिखने में किसी रॉयल फ़ैमिली का लगता था. बदन पर सीधा सादा ख़ादी का कुर्ता, आंखों पर नज़र का चश्मा. उन दिनों सादगी, अमीरी की निशानी थी. सुना, लंदन में ड्रामे में कुछ रिसर्च करने गया और 'तुगलग़' जैसा बड़ा ड्रामा लिखा है. लेकिन कमाल की बात थी भाई, हिंदी टूटी-फूटी बोलता, लेकिन अंग्रेज़ी में माहिर था. तुगलग का मंचन हुआ तो गिरीश कर्नाड नाम के झंडे दिल्ली में लहराने लगे. राजीव गांधी भी परिवार के साथ आया ड्रामा देखने. आप यूं कह लीजिए कि गिरीश ने 'तुगलग' से अपने आप को बकौल ड्रामा राईटर स्थापित कर लिया था. वह जब लैक्चर देता तो लड़कियां लैक्चर सुनने की बजाय उसके चेहरे की अदायगी देखतीं जो बहुत सशक्त होती. मतलब उसमें एक्टर बनने के सारे गुण मौज़ूद थे और वह फ़िल्मों में भी एक्टर बनना चाहता था.

समय का चक्र घूमा, गिरीश पूना फ़िल्म इंस्टीट्यूट का कर्ता-धर्ता बन गया. मेरे

परामर्श पर एन. एस. डी. पास करने के बाद नसीर और ओमपुरी जिन्हें फ़िल्मों में काम नहीं मिला था, पूना में एक्टिंग का कोर्स कर रहे थे. वहां पर फ़िल्म निर्देशक श्याम बेनेगल ने फ़िल्म 'निशांत' के लिए गिरीश कर्नाड को अभिनेता लिया और नसीर-ओमपुरी की नइय्या भी श्याम बेनेगल के साथ काम करने के बाद किनारे लगी. फ़िल्म की कहानी सच्ची थी, सशक्त थी, हीरोइन शबाना आजमी थी, संवाद पंडित सत्यदेव दुबे ने लिखे थे. कॉस्ट्यूम शमा ज़ैदी निर्देशक सत्यू की लिखी 'गर्म हवा' वाला) ने किये थे जो आजकल इस नाम से चिढ़ती है, लेखिका कहलवाना ज़्यादा पसंद करती है. स्मिता पाटिल टी. वी. पर न्यूज़ पढ़ती थी. अमरीश पुरी, मैं पौचम्मा (मेड सर्वेंट बनी). मतलब श्याम बेनेगल का ख़ुद का तो १२ साल बाद कल्याण हुआ ही सब कलाकारों को निशांत के हिट होने के बाद काम मिलने लगा. रोज़ी-रोटी की समस्या हल हो गयी. गिरीश ने फ़िल्म में शानदार अभिनय किया और फ़िल्मों के ढेरों ऑफर आने लगे.

कहते हैं न हर चीज़ का वक़्त होता है. श्याम बेनेगल का भी ग्रुप बन गया था. हर छोटा, मोटा कलाकार कहीं न कहीं दिख ही जाता क्योंकि श्याम बाबू की दुकान चल निकली थी. लेकिन हम लोगों को पैसा बहुत कम मिलता. फ़िल्म 'मंथन' में गिरीश के साथ स्मिता पाटिल हीरोइन थी. और हम बाकी के छोटे-

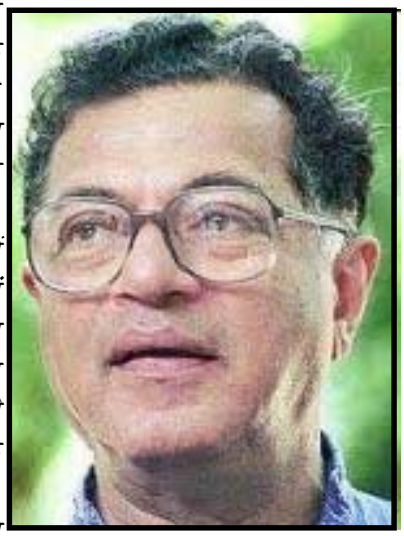

मोटे कलाकार चांद की चांदनी बढ़ाने के लिए कृष्ण कन्हैया गिरीश और राधा (स्मिता) के इर्द-गिर्द घूमते थे. फ़िल्म की शूटिंग गुजरात के एक गांव सागड़वा में हुई थी. जिसे अमूल दूधवालों ने बनाया था कृषकों के लिए.

'मंथन' की शूटिंग के दौरान मेरे पैर का फ़ैक्चर हो गया था इसलिए आराम करने का काफ़ी अवसर मिला. गिरीश जी से ढेरों बातें होतीं. एक बहुत ही पढ़ा लिखा, अच्छे संस्कारों में पला बढ़ा, समझदार इंसान था. लेकिन मुझे इनकी एक आदत ख़राब लगती. जहां जगह मिली सो गया और खर्राटे भरने लगा. कभी-कभी मुझे फ़िल्मों में काम पाने के गुर समझाता. आप बहुत सीधी हो, अच्छी बात है लेकिन आप बात ही नहीं करतीं किसी से. कम्यूनीकेशन बहुत ज़रूरी है. नहीं तो किसी को कैसे पता लगेगा कि आप गाना भी गाती हो, डान्स भी जानती हो. बहुत सशक्त अदाकारा हैं आप, श्याम से बात करो कि आपको स्मिता जैसे अच्छे रोल दे.

वक़्त के साथ–साथ श्याम का साथ छूट गया तो गिरीश अपनी कन्नड़ भाषा में फ़िल्में लिखने लगे और निर्देशित भी कीं. मुझे भी बैंगलोर से बुलावा. आता लेकिन किन्हीं वजहों से यह मुमकिन न हुआ. गिरीश ने फ़िल्में तो ख़ूब कीं. हां, सीरियल भी किये और अपार धन और यश कमाया. बंबई में लोग इन्हें वी. शांताराम का भाई समझते थे.

फ़िल्म 'आहिस्ता-आहिस्ता' में नंदा हीरोइन थी और नायक गिरीश. गुंडम्मा के वैंप पात्र में थी. फ़िल्म में बड़े-बड़े सितारे थे और एक गाना निदा फ़ाज़ली का लिखा आज भी ख़ूब बजता है—'कभी किसी को मुकम्मल जहां नहीं मिलता.' सेट पर गिरीश जी से मिलना होता रहता था. लेकिन बातचीत के अवसर कम थे क्योंकि ढेरों काम और समय की कमी थी गिरीश जी के पास.

समय किसी का इंतज़ार नहीं करता लेकिन हम बावरे हमेशा समय का इंतज़ार करते हैं. सुना गिरीश कर्नाड दिल्ली के मंडी हाउस में साहित्य अकादमी में किसी बड़े पद पर आसीन हो उसकी शोभा बढ़ा रहे हैं. कई बार इन्हें टी. वी. पर बड़ी-बड़ी नामी-गिरामी हस्तियों को शाल और ट्राफी से सम्मानित करते भी देखा. फिर पता नहीं हवा किस दिशा में बह निकली. गिरीश जी आजकल कहीं दिखाई ही नहीं देते. न ही इनके नाम की चर्चा होती है, न किसी नये नाटक के साथ गिरीश कर्नाड का नाम जोड़ा जाता है और न ही फ़िल्म में कोई रोल करने की चर्चा. हां, हो सकता है गिरीश कहीं लंदन में लैक्चर दे रहे हों या 'तुगलग' जैसा महान नाटक लिख रहे हों, कौन जाने? हां, कभी किसी को मुकम्मल जहां नहीं मिलता वाली बात भी तो सौ पर्सेंट सत्य है.

पुस्तक समीक्षा

तितली के परों से फूल की पाखुंड़ी पर शबनम की दास्तान

✍ *मयंक अवस्थी*

अपना तो मिले कोई (ग़. सं.) : **देवमणि पांडेय**
प्रकाशक : अमृत प्रकाशन, १/५१७०, बलबीर नगर, गली नं. ८, शाहदरा, दिल्ली-११००३२.
मू. १५०/- रु.

भगवान ने गीता में अर्जुन से अपनी विभूतियों का वर्णन करते हुए कहा है कि महीनों में मैं मार्गशीर्ष का महीना हूं और वेदों में मैं सामवेद हूं. कारण बहुत स्पष्ट है कि मनुष्य के शरीर, मन, इंद्रियों और बुद्धि को पुलकित करने वाले इस समशीतोष्ण मौसम वाले माह का कोई जवाब नहीं और जो संगीत सामवेद की ऋचाओं में है उसका मुकाबला अतिशय बुद्धिलब्ध मनीषियों की ऋग्वेद की वाणी भी नहीं कर सकती. यहां हमारा काम गीता की विवेचना नहीं है बल्कि एक सवाल उठाना है कि ''क्या ऐसी भी शायरी कोई कर सकता है जिसके लिए योगेश्वर यह कह सकें कि शायरों में मैं फलां हूं. यानी सर्वस्वीकार्य और निर्विवाद शायर जो सभी को सिर्फ़ पसंद ही आये?'' जवाब है हां और एक नाम मैं आपको बता सकता हूं, यह नाम है—श्री देवमणि पांडेय.

चलिए मुद्दे की बात की जाये. यानी श्री देवमणि पाडेय के ख़ुशबू से सराबोर गुलदस्ते की, यानी उनके ग़ज़ल संग्रह, ''अपना तो मिले कोई'' की. उन्वान से स्पष्ट है कि यहां आत्मीयता की तलाश है और यह हमारे समय की सबसे बड़ी मानवीय आवश्यकता भी है. एक विशिष्ट और मौलिक लहजे में कहे गये अशआर एक सवाल छोड़ते हैं कि—''क्या कोई और ऐसे अशआर कह सकता है?'' जवाब है कि 'हां!! कह सकता है!! ऐसे अशआर मुहतरम बशीर बद्र साहब और क़तील शिफाई से मश्वरा करके कह सकते हैं.'' निष्कर्ष यह है कि नर्म बारिश की फुहार जैसी जिस शायरी के लिए बशीर बद्र साहब जाने जाते हैं और अपने अशआर में जिस संगीत के लिए क़तील शिफाई मशहूर हैं—ये रंग और ख़ुशबू देवमणि जी ने अपने अशआरों में इस ख़ूबसूरती से पिरो दिये हैं कि इतना तय है जिन पुस्तकों को पाठकों का सबसे बड़ा वर्ग पसंद करता है उनमें एक नाम और जुड़ गया है.

यह पुस्तक ग़ज़ल के व्याकरणीय अनुशासन पर पूरे तौर पर खरी है. उर्दू और हिंदी दोनों पाठक वर्गों में दिल से पसंद की जाने वाली भाषा में बात करती है. यह भाषा मीर साहब भी बोलते थे और ग़ज़लों में वो ज़ज़्बात पिरोये हैं जो हमारे आपके और सबके दिलों को छू लेते हैं. बिल्कुल अपने लगते हैं. वो अशआर जिनको सुन कर हम कहते है कि ठीक यही हम भी कहना चाहते थे लेकिन चूंकि हमारा इज़हार क़ासिर था इसलिए कह नहीं सके. बहर कैफ़ देवमणि जी ने दिल की बात कह दी और यह बिल्कुल सच है कि इन्होंने ठीक हमारे ही दिल की बात कह दी है. ये पुस्तक हिंदुस्तान-पाकिस्तान-अफगानिस्तान और ईरान तथा सभी जगह जहां खड़ी बोली हिंदुस्तानी की रसाई है वहां समझी और सराही जायेगी. भाषा की आसानी और ख़्याल की गहराई ने कमाल किया है. दूसरा पहलू है अरुजो-फ़िक्रो-फ़न का. कुछ मिसरे मैं ज़रूर क्वोट करना चाहूंगा—

मुमकिन है कि पानी में तुम आग लगा दोगे,
अश्कों से लिखे ख़त को मुश्किल है जला देना ।
इस दुनिया की भीड़ में अक्सर चेहरे गुम हो जाते है,
रखनी है पहचान तो अपना चेहरा अपने पास रहे ।

तसव्वुफ़ इनके शेरों में दूध में मक्खन की तरह छुपा है. कहीं कहीं बहुत स्पष्ट भी है—

अभी तक यह भरम टूटा नहीं है,
समंदर साथ देगा तिश्नगी का ।
दिल में मेरे पल रही है यह तमन्ना आज भी,
इक समंदर पी चुकूं और तिश्नगी बाकी रहे ।

तृष्णा रक़्तबीज़ होती है. मर कर और भी उद्दाम और

लघुकथा

स्मृति-चिन्ह

✍ कमलेश भारतीय

शहर के बड़े बाज़ार में मेरे दोस्त की दुकान है. वह शो-पीस की वैरायटी के लिए मशहूर है. कहीं भी कोई कार्यक्रम हो तो सब उसकी दुकान का रुख करते हैं. फ़ुरसत के पलों में मैं अपने दोस्त की दुकान पर जा बैठता हूं. ऐसे ही बैठे हम दोनों गप्पें हांक रहे थे कि एक सरकारी गाड़ी आकर दुकान के सामने रुकी. एक भद्र महिला उतरी और उसके पीछे-पीछे ड्राइवर बहुत सारे स्मृति-चिन्ह उठाये आ खड़ा हुआ. काउंटर पर रखवाने के बाद उसे भद्र महिला ने वापिस गाड़ी में जाने का आदेश दे दिया. इसके बाद वह महिला बड़े रौब से मेरे दोस्त से कहने लगी कि इनके पैसे लगाओ और मुझे दे दो. वह बेचारा कहता रहा कि ये उसके किसी काम नहीं आयेंगे लेकिन वह अड़ी रही और कहती रही कि हम इन स्मृति-चिन्हों का क्या करें? वह पैसे लेकर ही गयी.

- कौन थी यह भद्र महिला?

- एक उच्चाधिकारी की पत्नी.

मैं हैरान रह गया कि क्या कार्यक्रमों में बड़े प्यार से दिये जाने वाले महंगे स्मृति-चिन्हों का यही उपयोग होता है? यह सदैव मेरी स्मृति में चिन्हित रहेगा.

✆ हरियाणा ग्रंथ अकादमी, अकादमी भवन, पी १६, सेक्टर-१४, पंचकूला-१३४११३

प्रचंड संवेग से प्रत्युपन्न हो जाने वाली. लेकिन शायर ने बेहद ख़ूबसूरती से कबीर के लहजे में 'हंसबा खेलबा करिबा ध्यानम' की शैली में गहरी बातें आसानी से कह दी है. पुस्तक का आकार विशिष्ट है और शब्दों में फॉन्ट में नस्ता लीक और देवनागरी दोनों की आहट मिलती है. यानी इस शायरी को जिस गुलदस्ते में पेश किया जाना था ठीक उसी में पेश किया गया है. शायरी जिस तहज़ीब की पैरोकार होती है उसका ख़ासा ध्यान रखा गया है. तय है कि उनकी शख़्सियत में सलीके और तहज़ीब के वे सभी ज़ाविये शुमार हैं जो कि ग़ज़ल को मुकम्मल और शायर को कामिल शायर बनाते हैं? उनको सलाम!! क्योंकि इतनी आसान ज़ुबान में इतनी ख़ूबसूरत ग़ज़लें उन्होंने कहीं. उनको सैकड़ों दाद!! क्योंकि शायर बशीर बद्र के बाद मेरे देखे वो दूसरे ऐसे समकालीन शायर हैं जिनके शेर जितने आसान हैं उतने ही गहरे भी हैं. मैं चाहता था कि ढेर सारे ख़ूबसूरत अशआर यहां क्वोट करूं लेकिन कथ्य की परिधि फिर बहुत बढ़ेगी. एक मशवरा यह ज़रूर देना चाहूंगा कि डिमाई साइज़ में भी पेपरबैक में यह पुस्तक ''अपना तो मिले कोई'' कुछ कम दामों पर भी उपलब्ध करवायें. एक बार बुक-स्टाल पर पन्ने पलटने के बाद कोई भी इस पुस्तक के मोह से ख़ुद को दूर नहीं रख सकेगा.

शायरी में आज बहुत उच्च स्तर की शायरी भी उपलब्ध है. लेकिन कुछ शायरों को शिल्प से इतना मोह है कि कथ्य छुप जाता है. जैसे बहुत कढ़ाई से कपड़ा छुप जाता है. दूसरे अतिरंजित भावनात्मक उद्वेग का सहारा लेते हैं, यहां रंग से कपड़ा छुप जाता है. अच्छा शेर वही है जो भावपक्ष और कलापक्ष दोनों का समुचित ध्यान रखे और दोनों को कितना प्रतिशत शेर में होना चाहिए इसका भी ज्ञान शायर को होना चाहिए. देवमणि जी सब कुछ जानते हैं.

अगर ग़ज़ल तितली के परों से फूल की पांखुड़ी पर शबनम की दास्तान लिखने का नाम है तो शत प्रतिशत देवमणि पांडेय ने मुकम्मल ग़ज़ल कह दी है. उनका व्यक्तित्व भी तस्दीक करता है कि वे ऐसी ही ग़ज़लें कहते क्योंकि वो लगभग पचास बरस की उम्र में भी नौजवान हैं, तरोताज़ा हैं. शिद्दते-अहसास और ऊर्जा से भरपूर व्यक्तित्व के मालिक हैं. नि:संदेह 'दिल की बातें' और 'ख़ुशबू की लकीरें' के बाद ''अपना तो मिले कोई'' के रूप में देवमणि जी ने एक यादगार पुस्तक का अदब की दुनिया को तोहफा दिया है.

✆ ई-३८, आर.बी.आई. ऑफीसर्स कॉलोनी, बेरामजी टाउन, नागपुर-४४००१३

गीत

आज फिर से तुम करो शृंगार मेरा

✍ डॉ. माया सिंह 'माया'

रात बीती हो गया अब तो सवेरा,
आज फिर से तुम करो शृंगार मेरा ।
मैं नियति के चक्र पर नचती रही हूं
जिस तरह नागिन नचाता है सपेरा.
ज्वार भाटों ने दिये ऐसे थपेड़े,
तैरते दीखे जलधि में अपने डेरे,
क्या पता अब हो कहां अपना बसेरा,
आज फिर से तुम करो शृंगार मेरा ।
ओढ़ ली थी मोह की मैंने चुनरिया,
भूल बैठी थी पिया तेरी डगरिया,
हो चुका है दूर अब सारा अंधेरा,
आज फिर से तुम करो शृंगार मेरा ।
मांग में सिंदूर भर दो आज मेरी,
और सवारो अब तुम्ही चूनर ये मेरी,
अंग अब क्या संग दे पायेंगे मेरा,
आज फिर से तुम करो शृंगार मेरा ।
दीप बुझते प्राण ओझल हो रहे हैं.
मेरी माटी पर सभी अब रो रहे हैं,
जा रही हूं अब मिलन की आयी बेरा,
आज फिर से तुम करो शृंगार मेरा ।

✆ १०१४, राजेंद्र नगर (बैंक कालोनी), उरई-२८५००१

लघुकथा

सोच

✍ डॉ. नरेंद्र नाथ लाहा

मकान के ऊपरी हिस्से में बूढ़े दादा और दादी रहते हैं. नीचे के हिस्से में पुत्र, बहू एवं पोता रहते हैं. कोई मनमुटाव नहीं है, आपस में प्रेम है, और सब अपनी-अपनी दुनिया में मस्त हैं. यदि किसी को कुछ ज़रूरत होती है तो दूसरे से बातचीत होती है अन्यथा कम ही होती है. कसूर किसी का नहीं है. पुत्र और बहू अपने-अपने काम में अत्यंत व्यस्त हैं. दादा और दादी धार्मिक कार्यों में व्यस्त हैं. पोता सब जगह सबका मिलन कराता रहता है.

एक दिन गड़बड़ी हो गयी. दादा और दादी आपस में बात कर रहे थे, ''यूं तो अपना पोता रोज़ कुछ समय के लिए हमसे मिलने आ जाता है. पर कई दिनों से आया नहीं है. लगता है कि लड़का बड़ा होता जा रहा है. जितना बड़ा होता जायेगा उतना ही उसे बुज़ुर्गों का ख़्याल कम आयेगा. यह भी हो सकता है कि उसके माता-पिता ने उसे समझाया हो कि दादा-दादी से कम मिला करो.'' कुल मिलाकर दादा और दादी दु:खी थे.

यकायक दरवाज़े पर थपकी हुई. दादी ने दरवाज़ा खोला. सामने पोता खड़ा था. धड़धड़ाते हुए वह कमरे में आ गया. दादा ने पूछा, ''तू इतने दिन से कहां था?'' पोते ने जवाब दिया, ''मेरे इम्तहान चल रहे थे. सांस लेने तक की फ़ुर्सत नहीं थी. नीचे पापा और मम्मी के पांव छूकर इम्तहान देने जाता था. समय की कमी के कारण नीचे से ही आप दोनो को मन ही मन प्रणाम करके इम्तहान देने चला जाता था. अब इम्तहान हो गये हैं. आगे की तरह आप दोनों से मिलने आया करूंगा.''

बच्चे की इसी सोच की वजह से बूढ़े दादा और दादी के आंखों में ख़ुशी के आंसू आ गए. उन्हें लगा कि अब भी जीने में आस है.

✆ २७, ललितपुर कॉलोनी, डॉ. पी. एच.लाहा मार्ग, लश्कर, ग्वालियर-४७४००९ (म. प्र.)

ग़ज़लें

✍ हुमायूं जमील

समंदर है, शहर हैं, लोगों का सैलाब है,
परे पड़ी है ज़िंदगी और आदमी बेताब है ।
चुरा कर 'फ़्लोर' का 'इंडेक्स' बना लेते बड़े टॉवर.
शहर के विकास का यह नया हिसाब है ।
'टेंडर' निकला रोज़ सड़कों के 'रिपेयर' का,
हमारे घर का रास्ता रहता मगर ख़राब है ।
मल्टिप्लेक्स मॉलों की रौनक हो गयी लैला,
मजनूं के हाथ में बस वही गुलाब है ।
कहीं तो मिनटों में 'डेलिवर' है घर 'पिज़्ज़ा',
और कहीं बीमार को एक डॉक्टर नायाब है ।
जली हुई ट्रेनों में लगाते जा रहे नये डिब्बे,
बमों के फटने का क्या यही जवाब है ।
सुना है के कभी सोता नहीं तेरा शहर फिर भी,
हर एक शख़्स की आंखों में रंगीन ख़्वाब है

✍ ८/६३, जी. आई. सी. ऑफिसर्स क्वार्टर्स, रिक्लेमेशन, बांद्रा, मुंबई- ४०००५०

✍ डॉ. प्रद्युम्न भल्ला

फ़िर मत बात पुरानी लिखना,
अब के नयी कहानी लिखना ।
कैसे भूखी सो जाती है,
थक कर बिटिया रानी लिखना ।
बचपन की मीठी यादों सी,
वो दादी वो नानी लिखना ।
अब तो घर को लौटो राजा,
बिटिया भयी सयानी लिखना ।
इस अनजाने शहर में हमको,
मिली है प्रीत निशानी लिखना ।
सबके मन में बस जाना तू,
सबकी आंख का पानी लिखना ।
बचपन में बूढ़ी हो जाती,
ऐसी कोई जवानी लिखना ।
सब पे भरोसा कर लेते हैं,
होती है नादानी लिखना ।

✍ ५०८, सेक्टर-२०, शहरी संपदा, कैथल (हरि.) १३६०२७

लघुकथा

जल्दबाजी

✍ कमलेश भारतीय

किसी सहकर्मी की मां का अचानक स्वर्गवास हो जाने का समाचार कार्यालय में पहुंचा. शिफ़्ट रोक कर सब लोग नहीं जा सकते थे इसलिए जिनकी शिफ़्ट पूरी हो गयी थी, वे प्रतिनिधियों के रूप में अंतिम संस्कार में शामिल होने चल दिये.

घर के बाहर भीड़ थी और घर के अंदर विलाप. एक किनारे शव ले जाने के लिए शवदाह गृह की गाड़ी खड़ी थी तो दूसरे किनारे ड्राइवर. वह मजे में बीड़ी के कश खींच रहा था. न उसे शोक-संतप्त चेहरों से मतलब था, न घर के अंदर होने वाले विलाप से. वह तो बार-बार घड़ी देख रहा था और हाथ मल रहा था.

पार्थिव शरीर बाहर लाया गया तो बेटी से रहा न गया. वह लिपट कर रोने लगी. अभी रिश्ता जीवंत जो था. पंडित बेटे को बुला कर मंत्रोच्चारण करने लगा.

इसी बीच ड्राइवर का धैर्य चूक गया. वह वहीं किनारे से चिल्लाया—जल्दी करो. यह पूजा-वूजा शमशान घाट जाकर कर लेना. मुझे अगली अर्थी भी उठानी है.

उसकी इस जल्दबाजी से सभी हक्के-बक्के रह गये.

✍ पी-१६, सेक्टर-१४, पंचकूला-१३४११३ (हरियाणा)

"कमलेश्वर स्मृति कथा पुरस्कार-२०११"

*"**कथाबिंब**" के प्रकाशन का यह ३४वां वर्ष है. एक अभिनव प्रयोग के तहत प्रतिवर्ष पत्रिका में प्रकाशित कहानियों को पुरस्कृत करने का उपक्रम हमने प्रारंभ किया हुआ है. पाठकों के अभिमतों के आधार पर वर्ष २०११ के "कथाबिंब" के अंकों में प्रकाशित कहानियों का श्रेष्ठता क्रम निम्नवत रहा. सभी पुरस्कार विजेताओं को बधाई ! विजेता यदि चाहें तो इस राशि में से या तो वे स्वयं "**कथाबिंब**" की आजीवन या त्रैवार्षिक सदस्यता ग्रहण कर सकते हैं अथवा अपने किसी मित्र/परिचित को सदस्यता भेंट कर सकते हैं. कृपया इस संदर्भ में शीघ्र सूचित करें. हम अत्यंत आभारी होंगे.*

: सर्वश्रेष्ठ कहानी (१०००० रु.) :

- **आजकल** - डॉ. स्वाति तिवारी

: श्रेष्ठ कहानी (७५० रु.) :

- **नवारंभ** - राजेंद्र वर्मा
- **उसका फ़ैसला** - डॉ. पुष्पा सक्सेना

: उत्तम कहानी (५०० रु.) :

- **वापसी** - उषा भटनागर
- **बुलाकी** - संजीव निगम
- **मां, तुम कहां हो!** - अमर स्नेह
- **बंद ताला** - डॉ. मीनाक्षी स्वामी
- **शायद आसिफ भी यही सोच रहा होगा!** - डॉ. रमाकांत शर्मा

फॉर्म-४

समाचार पत्र पंजीयन केंद्रीय कानून १९५६ के आठवें नियम के अंतर्गत "कथाबिंब" त्रैमाासिक पत्रिका से संबंधित स्वामित्व और अन्य बातों का विवरण :

१. *प्रकाशन का स्थान*	:	*ज्ञानेश्वर माउली प्रिंटर्स, न्यू पत्रा शेड, चुन्नीलाल कंपाउंड, मुंबई -४०० ०३३.*
२. *प्रकाशन की आवर्तिता*	:	*त्रैमासिक*
३. *मुद्रक का नाम*	:	*मंजुश्री*
४. *राष्ट्रीयता*	:	*भारतीय*
५. *संपादक का नाम, राष्ट्रीयता एवं पूरा पता*	:	*उपर्युक्त, ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड, देवनार, मुंबई - ४०० ०८८.*
६. *कुल पूंजी का एक प्रतिशत से अधिक शेयर वाले भागीदारों का नाम व पता*	:	*स्वत्वाधिकारी - मंजुश्री*

*मैं, **मंजुश्री** घोषित करती हूं कि मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपर्युक्त सभी विवरण सत्य हैं.*

*(हस्ताक्षर - **मंजुश्री**)*

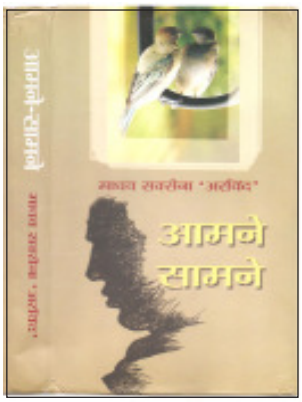

मूल्य : ४०० रु.

संपादक : डॉ. अरविंद

आमने-सामने

("कथाबिंब" के "आमने-सामने" स्तंभ में प्रकाशित २२ पुरुष-रचनाकारों के आत्मकथ्यों का संकलन.)

: प्रकाशक :
भावना प्रकाशन
१०९ ए, पटपटगंज, दिल्ली-११००९१.
फोन : २२७५६७३४, मो ०९३१२८६९९४७
"कथाबिंब" के लेखकों और पाठकों के लिए २० % छूट. सीधे प्रकाशक से संपर्क करें.

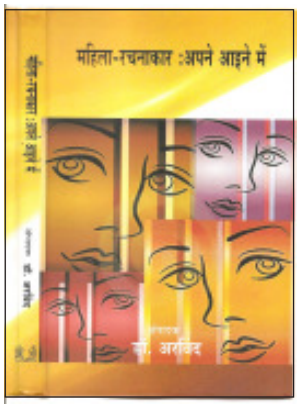

मूल्य : २५० रु.

महिला-रचनाकार : अपने आइने में

("कथाबिंब" के "आमने-सामने" स्तंभ में प्रकाशित सभी महिला-रचनाकारों के आत्मकथ्यों का संकलन.)

: प्रकाशक :
भारत विद्या निकेतन
१३१, चित्तरंजन एवेन्यू,
प्रथम तल, कोलकाता-७०० ०७३

: एक मात्र वितरक :
मानव प्रकाशन
१३१, चित्तरंजन एवेन्यू,
प्रथम तल, कोलकाता-७०० ०७३

"कथाबिंब" के लेखकों और पाठकों के लिए २० % छूट. सीधे वितरक से संपर्क करें.
फ़ोन : ०३३-२२६८ ४८२२ व ०९८३१५ ८१४७९.

प्रज्ञा प्रकाशन

द्वितीय कहानी प्रतियोगिता-२०१२

प्रथम पुरस्कार : ५००० रु., द्वितीय पुरस्कार : ३००० रु.,
तृतीय पुरस्कार : २००० रु., पांच सांत्वना पुरस्कार : १००० रु. (प्रत्येक)

कहानियां प्राप्त होने की अंतिम तिथि : **३१ अक्तूबर, २०१२.**

अधिक जानकारी के लिए लिखें :

प्रज्ञा प्रकाशन (प्राची मासिक)
२४ जगदीश पुरम, लखनऊ मार्ग,
निकट त्रिपुला चौराहा, रायबरेली (उ. प्र.)-२२९३१४
फोन : ०६६१-२६४६००१
मोबाइल : ९४२५३२३१९३